अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, संयुक्तांक : 16-17, 1-30 अप्रैल 2021

राष्ट्रीय नमक सत्याग्रह स्मारक, दांडी गुजरात

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 44,संयुक्तांक : 16-17,1-30 अप्रैल 2021

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. ॐ स्वाहा : दांडी कूच... 3
3. मैं ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला रहा हूं... 5
4. दांडी मार्च और वेब मिलर... 7
5. स्मारकों में अंकित आंदोलन की गाथा... 9
6. बोधगया भूमि आंदोलन का आरंभ... 10
7. मील का पत्थर साबित हुआ आंदोलन... 12
8. आठ अप्रैल के बहाने... 13
9. यादों में बोधगया आंदोलन... 14
10. पटना, गया और शेखवारा... 15
11. एक संतुलित सहजीवन के लिए सिर्फ स्त्री को ही नहीं... 16
12. हे पुरुष! तुम टिटहरी की तरह पैर खड़ा... 17
13. महात्मा गांधी राष्ट्रपिता क्यों?... 19
14. मदन मोहन वर्मा न्याय के प्रति समर्पित एक गांधीवादी... 20
15. क्या मनुष्य ईश्वर बन जायेगा... 21
16. किसान आंदोलन में है अर्थव्यवस्था को बदल डालने... 22
17. मर्दों की बेलगाम लंपटता को खुली छूट का पर्व... 25
18. भारतीय राजनीति का हालिया आख्यान... 26
19. मार्टिन लूथर किंग जूनियर : जिनके लिए... 29
20. जब प्रभावती के ब्रह्मचर्य व्रत के अनुयायी बने... 31
21. मोरार जी देसाई : यादों के झरोखे से... 32
22. क्या गांधीजी ने डायर को क्षमा कर दिया था... 33
23. कश्मीर में बैठ के कश्मीर को समझने का एहसास... 34
24. श्रद्धांजलि... 36
25. जमीन और जमीर को बचाने की लड़ाई... 39
28. कविताएं... 40

संपादकीय

दाण्डी मार्च : स्वराज्य का अवतरण

कांग्रेस द्वारा 26 जनवरी, 1930 को पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा के बाद कांग्रेस कार्यकारिणी ने 14-16 फरवरी को साबरमती में यह निर्णय लिया कि जो लोग पूर्ण स्वराज्य हासिल करने के लिए अहिंसा पर विश्वास रखते हैं, उनके द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की जायेगी। यह भी निर्णय लिया गया कि जब यह आंदोलन जनआंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लेगा तो, उन तबकों से जो सरकार का सहयोग किसी भी प्रकार करते हैं, जैसे वकील, विद्यार्थी आदि, उनका आह्वान किया जायेगा कि वे सरकार से सहयोग वापस ले लें तथा स्वतंत्रता के संघर्ष में कूद पड़ें। कांग्रेस कार्यसमिति ने गांधीजी को अधिकृत किया कि वे यह निर्णय लेंगे कि वे और उनके अनुयायी, सविनय अवज्ञा कब प्रारंभ करेंगे।

गांधीजी ने 2 मार्च 1930 को वाइसराय लार्ड इरविन को एक पत्र लिखकर, उन्हें अपने सत्याग्रह कार्यक्रम की सूचना दी। 12 मार्च 1930 को गांधीजी ने साबरमती आश्रम से, अपने 78 सहयोगियों के साथ दाण्डी मार्च शुरू किया। गांधीजी पदयात्रा करते हुए, रास्ते में पड़ने वाले गांवों में रुकते, पूर्ण स्वराज्य के विचार से लोगों को जोड़ते गये। देश भर में एक उसाह की लहर दौड़ गयी। 5 अप्रैल 1930 को वे दाण्डी पहुंचे। 6 अप्रैल 1930 को उन्होंने समुद्री लहरों द्वारा छोड़े गये नमक को अपनी मुट्ठी में भर लिया। इसके बाद तो देश भर में लोगों ने नमक कानून तोड़ा। प्रकृति प्रदत्त जीवन-आधार पर हमारा नैसर्गिक अधिकार है, इस भावना का व्यावहारिक प्रकटीकरण, स्वराज्य की दिशा में बढ़ाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

नमक कानून तोड़ने के अलावा कई जगहों पर अन्य तरह से भी सविनय अवज्ञा कार्यक्रम चलाया गया। मध्य प्रांत एवं बाम्बे में लोगों ने विशेषकर वन सम्पदा पर जीवन जीने वाले लोगों ने, वन कानूनों को तोड़ा तथा वन सम्पदा पर हमारा अधिकार है, यह स्थापित किया। गुजरात, संयुक्तप्रांत (यू.पी.) एवं बंगाल के कुछ हिस्सों में किसानों ने टैक्स एवं भू-राजस्व न देने का अभियान चलाया। उत्तर पश्चिमी फ्रंटियर प्रांत (एनडब्ल्यूएफपी) में तो कई प्रकार के सत्याग्रह किये गये, जिसका नेतृत्व खान अब्दुल गफ्फार खान (सीमांत गांधी) ने किया। इन सबके बीच गांधीजी ने नमक कानून तोड़ने को मुख्य लक्ष्य बनाये रखा। इस दिशा में अगला कदम सूरत जिले के धरसणा के नमक गोदाम पर सत्याग्रह करने का निर्णय था। उन्होंने अपने निर्णय की सूचना वाइसराय को भेज दी। उस पत्र में उन्होंने यह भी आग्रह किया कि सरकार लोगों के नमक बनाने के नैसर्गिक अधिकार को बाधित करने वाले नमक कानून को खत्म कर दे। जवाब में सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया।

तब श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में सत्याग्रहियों ने सत्याग्रह शुरू किया। अहिंसा की पराकाष्ठा प्रकट करने वाला यह सत्याग्रह 1 जून को हुआ। इस सत्याग्रह में 15000 सत्याग्रहियों ने भाग लिया। सत्याग्रहियों का जत्था आगे बढ़ता, तो पुलिस के सिपाही उन पर लोहे से लैस लाठियां बरसाना शुरू कर देते। सत्याग्रही लाठी से बचने के लिए हाथ भी नहीं उठाते। इस प्रकार बिना किसी प्रतिकार के, बिना किसी चीत्कार के, वे लाठी खाकर, सिर एवं हड्डियां तोड़वा कर खून से तर बतर होकर गिर जाते। उनके चेहरे पर या हाव-भाव में कोई क्रोध नहीं होता था। तब कुछ स्वयंसेवक उन्हें स्ट्रेचर पर उठा ले जाते। फिर दूसरा जत्था आगे बढ़ता और पुलिस जुल्म की वही पुनरावृत्ति होती। यह सिलसिला तब तक जारी रहा, जब तक कि सारे सत्याग्रही लहू-लुहान होकर गिर नहीं पड़े। विश्व इतिहास में अहिंसक प्रतिकार, आत्मत्याग एवं आत्म संयम का यह अद्भुत उदाहरण है। इस घटना ने विश्व की दृष्टि बदल दी। पाशविक सभ्यता एवं अहिंसक सभ्यता का भेद स्पष्ट कर दिया।

इस दौरान एक और बड़ा परिवर्तन हो रहा था। 10 अप्रैल 1930 को गांधीजी ने अपने पत्र यंग इंडिया में लेख लिखा और भारत की महिलाओं से एक विशेष अपील की। उन्होंने महिलाओं से आग्रह किया कि वे पिकेटिंग एवं चरखा चलाने का कार्य अपने आथ में लें। एक चमत्कारी परिणाम सामने आया। देश भर की लाखों महिलाओं ने इस कार्यक्रम में भाग लिया। रुढ़िवादी एवं पर्दे में रहने वाली महिलाएं, जो कभी घर से बाहर नहीं निकली थीं, उन्होंने भी गिरफ्तारी दी तथा जेल गयीं। महिलाओं के जागरण एवं संघर्ष में उनकी भागीदारी का यह अप्रतिम उदाहरण था। स्वराज्य संघर्ष ने एक नये उच्च आयाम को हासिल किया। लोगों में स्वदेशी और स्वराज्य की भावना भरने तथा विदेशी हुकूमत से अपने को मुक्त करते जाने का एक अद्वितीय प्रयोग शुरू हो चुका था। **-बिमल कुमार**

ॐ स्वाहा : दांडी-कूच

(1930)

'सर पर कफन लपेटे कातिल को ढूंढ़ते हैं।'

❑ हरिभाऊ उपाध्याय

गांधीजी ने घोषणा की कि अब असहयोग अत्यन्त अनिवार्य हो गया है। वे सोचने लगे कि सामूहिक कानून-भंग के लिए कौन-सा कानून का मुद्दा लिया जाय। अंत में वे इस निर्णय पर पहुंचे कि नमक कानून तोड़ना अच्छा रहेगा।

जब यह बात खास-खास लोगों को मालूम हुई, तो लोग बड़े चकराये और कहने लगे कि नमक कानून तोड़कर, यानी घर-घर नमक बनाकर, हमें स्वराज्य कैसे मिल जायेगा, और यहां से अंग्रेजों को कैसे हटा सकेंगे?

इसी पर विचार करने के लिए संभवतः फरवरी में कांग्रेस की बैठक साबरमती में बुलायी गयी। उसमें जिस विस्तार से गांधीजी ने नमक कानून तोड़ने का महत्त्व और तरीका समझाया, उस पर सब लट्टू हो गये। मोतीलाल जी ने कहा कि गांधीजी सचमुच जादूगर हैं। हमारी समझ में नहीं आ रहा था, मगर उन्होंने हमारे सबके दिमागों पर कब्जा कर लिया।

गांधीजी सत्याग्रह-संग्राम के महान् सेनापति (डिक्टेटर) बनाये गये। बारह मार्च को उन्होंने अपने सहित आश्रम के चुने हुए अस्सी स्त्री-पुरुष सैनिकों के साथ दांडी-यात्रा प्रारंभ की और 6 अप्रैल को दांडी के समुद्र तट पर बिना नमक का कर चुकाये अपनी झोली में नमक भर लिया। उनके सब साथियों ने भी ऐसा ही किया। गांधीजी के हाथों उस दिन नमक कानून ही नहीं टूटा, साम्राज्यवाद की जड़ पर बड़ी जोर का कठोर आघात हुआ।

पांच मई की आधी रात को गांधीजी की गिरफ्तारी हुई। पुलिस उन्हें अज्ञात स्थान पर ले गयी।

छह अप्रैल को दांडी में गांधीजी के द्वारा नमक कानून तोड़ना नमक सत्याग्रह करने की हरी झंडी था। सारे देश में जगह-जगह कांग्रेस के नेताओं ने और स्वयंसेवक स्त्री-पुरुषों ने गैरकानूनी नमक बनाया और उसके फलस्वरूप सारे भारत की जेलें नमक सत्याग्रहियों से भर गयीं।

लाहौर कांग्रेस, बल्कि उसके पहले कलकत्ता-कांग्रेस के बाद से ही, खासकर नमक कानून तोड़ने की बात जब से वातावरण में फैली, लोग बड़ी गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ स्वतंत्रता-संग्राम की तैयारी में लग गये थे। वे अब पहले से अधिक अनुशासन सीख गये थे और संघर्ष की रूपरेखा को अधिक स्पष्ट रूप से समझने लगे थे। उसकी कला भी अब कुछ-कुछ समझ में आ रही थी। किन्तु गांधीजी के दृष्टिकोण से इससे भी बड़ी बात यह थी कि हर आदमी पूरी तरह से समझ गया था कि अहिंसा के लिए गांधीजी के हृदय में एक जबर्दस्त सच्चाई और लगन है। इस संबंध में अब किसी को संदेह नहीं रह गया था, जैसा कि दस साल पहले लोगों को था। इतने पर भी यह निश्चय कैसे हो सकता था कि कहीं एकाएक या किसी षड्यंत्र के फलस्वरूप हिंसा नहीं फूट पड़ेगी और यदि ऐसी कोई घटना घटी तो उसका आंदोलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या पहले की तरह इस बार भी आंदोलन सहसा बंद कर दिया जायेगा? यह संभावना सबसे ज्यादा घबराहट पैदा कर रही थी।

गांधीजी की बातों से लगता यही था कि उनकी विचारधारा में कुछ परिवर्तन आ गया था। सविनय अवज्ञा के आरंभ हो जाने पर उसे किसी आकस्मिक हिंसक घटना के कारण बंद करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु अगर हिंसा किसी रूप में आंदोलन का ही अंग बन जाय, तो निःसंदेह वह आंदोलन एक शांतिपूर्ण आंदोलन नहीं रह जायेगा और उसकी कार्रवाइयों को कम करना या बदलना होगा। गांधीजी के इस आश्वासन ने बहुतों को काफी निश्चिन्त कर दिया था।

एकाएक 'नमक' एक रहस्यपूर्ण और प्रभावकारी शब्द बन गया था। दूसरी आश्चर्यजनक घटना गांधीजी की 'ग्यारह सूत्रों' की घोषणा थी। कुछ लोग मन में सोचने लगे थे कि जब हम स्वतंत्रता की बातें कर रहे थे, तो थोड़े से राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की सूची बनाने का क्या मतलब था, चाहे वे सुधार अच्छे ही क्यों न हों? क्या 'स्वतंत्रता' शब्द का प्रयोग करते समय गांधीजी का भी वही मतलब हुआ करता है, जो हमारा है। किन्तु बहस करने के लिए समय ही कहां था? घटना का क्रम प्रारंभ हो गया था। भारत में तो घटनाएं हमारी आंखों के सामने ही राजनीतिक रूप धारण कर दिन-पर-दिन आगे बढ़ रही थीं। भारत से बाहर संसार के अन्य देशों में भी वह तेजी से बढ़ रही थीं, चीजों की कीमतें गिर रही थीं। शहर वाले अतिशय लाभ का संकेत समझकर प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु किसान और आसामी उसे घबराहट के साथ देख रहे थे। ऐसे वातावरण में गांधीजी ने दांडी यात्रा शुरू की थी।

जवाहरलाल लिखते हैं—"हम उनसे दांडी-यात्रा में मिलने गये। उस समय वे अपने जत्थे के साथ जम्बूसर पड़ाव में थे। वहां हम उनके साथ कुछ घंटे रहे, जिसके बाद वे दलबल सहित खारे समुद्र की यात्रा के अगले पड़ाव की ओर चल दिये। उस रूप में मेरे लिए उनकी वह अंतिम झलक थी। हाथ में एक लाठी लिये वे अपने अनुयायियों के आगे-आगे मजबूत कदम और शांतिपूर्ण किन्तु स्थिर दृष्टि से चल रहे थे। निश्चय ही वह दृश्य हृदय को हिला देने वाला था।"

"ऐसा मालूम होता था, मानो सहसा बसंत छा गया। देश के शहर-शहर और गांव-गांव में नमक बनाने की चर्चा थी और नमक तैयार करने के लिए बड़े विचित्र तरीके काम में लाये जा रहे थे। इस संबंध में हम जानते तो बहुत ही कम थे, इसलिए जहां से संभव होता था, वहीं से कुछ पढ़-पढ़ाकर परचे बांट-बांटकर हिदायतें देते थे। हम बर्तन और कड़ाही इकट्ठा करते थे और अंत में थोड़ा-बहुत नमक तैयार कर ही लेते थे। उसी को हम विजय-उन्माद में उठाये फिरते थे और ऊंचे-ऊंचे दामों पर नीलाम कर देते थे। चीज अच्छी तैयार हो रही है या बुरी, इसका कोई सवाल नहीं था। असली काम मनहूस नमक-कर को तोड़ना था और इसी कार्य में हमें सफलता मिली, चाहे हमारे द्वारा तैयार किया गया नमक

हलके दर्जे का ही क्यों न था।

''जब हमने देखा कि जनता में अगाध उत्साह है और नमक बनाने का काम घास की आग की तरह फैलता जा रहा है, तो हमें इस बात पर लज्जा आयी कि जब गांधीजी ने पहले पहल नमक बनाकर नमक-कानून को भंग करने का प्रस्ताव रखा था तो हमने उसकी कार्यक्षमता पर शंका प्रकट की थी। अब हम उनके जनता को प्रभावित करने और उससे संगठित रूप में काम कराने के आश्चर्यजनक कौशल को देखकर स्तम्भित रह गये।

''सन् 1930 का वह साल नाटकीय स्थितियों और जोश दिलाने वाली घटनाओं से भरा हुआ था। हमें सबसे अधिक आश्चर्य गांधीजी की समस्त जनता में प्रेरणा और उत्साह भरने की विस्मयकारी शक्ति पर हुआ। उनमें मानो एक मोहिनी थी और हमें गोखले के उन शब्दों का स्मरण हो आया, जिनका उन्होंने एक बार गांधीजी के लिए प्रयोग किया था। उन्होंने कहा था - ''इनमें मिट्टी के लौंधे से बड़े-बड़े बहादुरों का निर्माण करने की शक्ति है।''

राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक कार्यप्रणाली के रूप में शांत सविनय अवज्ञा आंदोलन अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुका था और देशभर में - मित्रों और शत्रुओं, दोनों के हृदय में - यह मौन विश्वास उत्पन्न हो गया था कि हम विजय की ओर बढ़ रहे हैं। जो लोग आंदोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे, उनमें एक विचित्र उत्तेजना भरी हुई थी और यह कुछ-कुछ जेलों तक में पहुंच गयी थी। साधारण कैदी कहते थे - ''स्वराज्य आ रहा है।'' और इस स्वार्थपूर्ण आशा में कि इससे उन्हें भी कुछ लाभ होगा, वे बेचैनी के साथ उसकी प्रतीक्षा करते रहे। जेल वाले भी बाजार की चर्चाओं को सुनकर यह उम्मीद करने लगे थे कि स्वराज्य निकट है। जेल के छोटे-छोटे अधिकारी भी कुछ ज्यादा परेशान दिखाई देने लगे थे।

गांधीजी का यह नियम था कि सविनय अवज्ञा जैसा कोई भी बड़ा कदम उठाने से पहले वे सरकार से एक बार फिर अपील करते थे कि सरकार अब भी कांग्रेस की मांगों पर विचार करे, ताकि कानून-भंग जैसा अप्रिय कदम उठाने की जरूरत पैदा न हो। तदनुसार उन्होंने इस बार भी अपने आगे के कार्यक्रम के बारे में सूचना देते हुए लार्ड इर्विन को एक विस्तृत पत्र भेजा। इस पत्र में लाहौर कांग्रेस द्वारा स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव का उद्देश्य वाइसराय के सामने रखते हुए, जिन अभावों, अन्यायों और जुल्मों के कारण कांग्रेस को यह प्रस्ताव स्वीकृत करना पड़ा, उन्हें दूर करने की अपील करते हुए उन्होंने अंत में लिखा-

''अहिंसा पर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जानबूझकर मैं किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुंचा सकता, मनुष्यों को तो दुःख पहुंचाने की बात ही नहीं, भले ही वह मेरा या मेरे स्वजनों का कितना ही अहित कर दें। अतः जहां मैं ब्रिटिश राज को अभिशाप समझता हूं, वहां मैं एक भी अंग्रेज या भारत में उसके किसी भी उचित स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता।

''राजनीतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामों से अच्छी नहीं है। हमारी संस्कृति की जड़ ही खोखली कर दी गयी है। हमसे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्मबल तो लुप्त हो ही गया था, हम सबको निःशस्त्र करके कायरों की भांति निःसहाय और निर्बल बना दिया गया।

''सविनय अवज्ञा की योजना उपर्युक्त बुराइयों के मुकाबले के लिए है। ब्रिटिश संबंध-विच्छेद तो हम उन्हीं बुराइयों के कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जाने पर हमारा मार्ग सुगम हो जायेगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौते का द्वार खुल जायेगा। यदि ब्रिटेन के भारतीय व्यापार में से लोभ का मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेने में कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूं कि इन बुराइयों को दूर करने का मार्ग सुगम बनाइये और इस प्रकार वास्तविक परिषद के लिए अनुकूलता पैदा कीजिये। यह परिषद बराबरी के लोगों की होगी, जिनका हेतु एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छापूर्वक मित्रता का संबंध रखकर मानव जाति की भलाई का उद्योग किया जाय और उभय पक्ष को ध्यान में रखकर पारस्परिक सहायता एवं व्यापार किये जांय। दुर्भाग्यवश इस देश में सांप्रदायिक झगड़े अवश्य हैं, किन्तु आपने उन पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है, यद्यपि किसी भी शासन संबंध योजना में इस समस्या पर विचार करना महत्त्वपूर्ण बात है, फिर भी इससे भी बड़ी-बड़ी अन्य समस्याएं हैं, जो कौमी झगड़ों से परे हैं और जिनके कारण सब जातियों को समान रूप से हानि उठानी पड़ती है। अस्तु, यदि आप इन बुराइयों को दूर करने का उपाय नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्र का आपके हृदय पर असर नहीं होगा, तो इस मास की 11 तारीख को मैं आश्रम से उपलब्ध साथी लेकर नमक कानून तोड़ने के लिए चल पड़ूंगा। मैं गरीबों की दृष्टि से इस कानून को सबसे अन्यायपूर्ण समझता हूं। स्वाधीनता का यह आंदोलन मूलतः गरीब से गरीब आदमी की भलाई के लिए है। इसलिए इस लड़ाई की शुरुआत भी इसी अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमक के इस निर्दय एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूं कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में मुझे आशा है कि मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप से यह काम संभालने को तैयार होंगे और नमक कानून जैसे घृणित कानून को, जो कभी बनना भी नहीं चाहिए था, तोड़ने के कारण जो सजाएं दी जायेंगी, उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।''

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। ये भाई कुछ समय तक आश्रम में रह चुके थे।

गांधीजी के इस पत्र को जनता और अखबार ने 'अंतिम चेतावनी' का नाम दिया था। लार्ड इर्विन का उत्तर भी तुरंत और साफ-साफ मिला। वाइसराय साहब ने खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करने वाले हैं, जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शांति भंग होगी। गांधीजी का प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच विनय और साहस की भावना से कूट-कूटकर भरा था। उन्होंने लिखा, ''मैंने दस्तवस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर! अंग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहब के उत्तर पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेलखाने की शांति ही एकमात्र शांति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रेजी कानून को मानने से इनकार करता हूं और इस जबर्दस्ती की शांति 'मनहूस एकरसता' को भंग करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूं, इस शांति से राष्ट्र का गला रुंधा हुआ है। अब उसके हृदय का चीत्कार प्रकट होना चाहिए।'' ❑

मैं ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला रहा हूं

-नितिन ठाकुर

खून से सनी क्रांतियां देखने की आदी दुनिया को गांधी नाम के एक राजनीतिक संत ने अहिंसा को राजनीतिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना सिखाया. धार्मिक किताबों में भले ही अहिंसा के सिद्धांत का महिमामंडन होता रहा हो, लेकिन पहली बार लोगों ने उसे ज़मीन पर उतरते देखा. दांडी की ऐतिहासिक यात्रा उसी अभिनव प्रयोग का एक अहम पड़ाव थी. आज उस यात्रा के 91 साल पूरे होने के मौके पर हम आपको दांडी यात्रा से जुड़े कुछ बेहद दिलचस्प तथ्यों और घटनाओं से रूबरू करा रहे हैं. **-सं.**

आज से 91 साल पहले भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड इरविन जब दिल्ली में शानो-शौकत से भरे नये-नवेले वायसरॉय हाउस में आराम फरमा रहे थे, तब वहां से करीब बारह सौ किलोमीटर दूर एक 'अधनंगा फकीर' एक ऐसी यात्रा शुरू कर चुका था, जिसका असल अंजाम ब्रिटिश साम्राज्य ने 17 साल बाद 1947 में भारत की ज़मीन से अपनी आखिरी रुख़सती के रूप में भुगता.

दुनिया उस 386 किलोमीटर की पैदल यात्रा को दांडी मार्च के नाम से जानती है और यात्रा के अगुआ को मनुष्यता ने महात्मा के रूप में पहचाना. 61 साल के गांधी ने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से नवसारी के दांडी गांव के रास्ते को अपने लंबे डगों से 24 दिनों में नापा था. इस यात्रा में उनके पीछे 78 अनुयायी भी थे, जिनके लिए तेज़ गति से चलने वाले बापू से कदमताल मिलाना चुनौती भरा रहा होगा. 4 जिलों के 48 गांवों को इस जत्थे ने इस यात्रा में पार किया.

1920 के असहयोग आंदोलन और 1930 के ही साल में कांग्रेस की रावी तट से उठी 'पूर्ण स्वराज्य' की हुंकार के बाद दांडी मार्च अंग्रेज़ों का बुखार बढ़ाने के लिए काफी था. 12 मार्च 1930 को जब महात्मा गांधी अपने साबरमती आश्रम से यात्रा शुरू कर रहे थे, तब ब्रिटिश साम्राज्य को अंदाज़ा नहीं था कि इस यात्रा से उठी धूल भारत में उनकी साफ सुथरी तस्वीर को धुंधला कर देगी. महात्मा का हौसला देख भारत उठ खड़ा हुआ. 6 अप्रैल 1930 की सुबह अरब सागर के किनारे बसे दांडी गांव में खड़े होकर गांधीजी ने अपनी चुटकी में रेत मिला नमक उठाया तो अंग्रेजों का नमक से जुड़ा काला कानून टूट गया. उगते सूरज की किरणों से नहाए उस संत ने वहीं घोषणा की थी कि ऐसा करके मैं ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला रहा हूं.

असहयोग आंदोलन के दुख भरे अंत के बाद गांधी फिर उठ खड़े हुए और इस बार वे खून बहने से विचलित नहीं हुए. उनकी आंखों में पूरी तरह आज़ाद भारत का सपना था.

गांधी का अंग्रेज़ी हुक्मरानों से सवाल था कि गरीब हिंदुस्तानी नमक के लिए अंग्रेज़ों को क्यों टैक्स चुकाए. इसके अलावा उन्हें ज़मीन पर लगने वाले भारी-भरकम टैक्स पर भी आपत्ति थी. सेना पर होने वाले भारी भरकम खर्च को कम करने की मांग भी गांधी कर रहे थे. ऐसी ही ग्यारह मांगों को उन्होंने ब्रिटिश सरकार के सामने रखा. 2 मार्च 1930 को भी उन्होंने महामहिम गवर्नर जनरल को अपनी मांगें याद दिलाईं, मगर घमंड में चूर गवर्नर जनरल ने भारतीयों की इन मांगों की तरफ देखना तक गंवारा नहीं किया. गांधी इंतज़ार करते रहे और आखिरकार जब उन्हें भरोसा हो गया कि गवर्नर जनरल को गरीब हिंदुस्तानियों की कोई परवाह नहीं है, तो उन्होंने सबसे पहले सविनय अवज्ञा आंदोलन के तहत नमक कानून को ही निशाना बनाया.

दांडी यात्रा के गवाह बनने वाले भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल इरविन को अंदाज़ा नहीं था कि जिस आंदोलन से बेफिक्र कर वे सो रहे हैं, वही ब्रिटिश साम्राज्य के अंत का कारक बनेगा। दांडी ने लाखों हिंदुस्तानियों में भरोसा पैदा कर दिया कि बिना बंदूक उठाए भी काले कानूनों का विरोध किया जा सकता है और वह राह हिंसक रास्तों पर चलने की तुलना में ज्यादा दूर तक जाती है.

फिर क्या था. गांधी तो आगे बढ़ चले लेकिन साथ ही देश भर के लोग पहली बार अंग्रेज़ों के खिलाफ सड़कों पर उतर आए. उधर गांधी रास्ते में पड़ रहे हर गांव में सभाओं को संबोधित कर रहे थे, वहीं कांग्रेस ने दांडी से कुछ दूर धरसाना की नमक फैक्ट्री पर सत्याग्रह का इरादा पक्का किया. 4-5 मई की आधी रात को धरसाना पहुंचने से एक दिन पहले ही पुलिस ने गांधी नाम के तूफान को जेल के सींखचों में बंद करना चाहा. गिरफ्तारी नेहरू और पटेल की भी हुईं, लेकिन गिरफ्तारियां भला कहां किसी को रोक सकती थीं. अब्बास तैयब जी नाम के रिटायर्ड जज की अगुवाई में भीड़ ने आगे बढ़ना शुरू किया. धरसाना पहुंचने से पहले उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया. इस बार गिरफ्तारी कस्तूरबा की भी हुई.

अंग्रेज़ हिंदुस्तानियों के अहिंसक हौसले से रूबरू हो रहे थे. सरोजिनी नायडू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद आगे बढ़े. देश भर से कांग्रेसी धरसाना की ओर कूच करने लगे. सैकड़ों की संख्या में गिरफ्तारियां होने लगीं. कांग्रेस का पूरा ज़ोर इसी बात पर था कि चाहे अंग्रेज़ पीटें, गोली मारें या गिरफ्तार करें, लेकिन किसी भी सत्याग्रही को ज़रा सी भी हिंसा नहीं करनी है. दुनिया इस अभूतपूर्व प्रयोग की ओर अचरज से देख रही थी. बम और बंदूक से क्रांति करने वाला पश्चिम कहां विश्वास कर सकता था कि पूर्व का एक राजनीतिक संत अहिंसा के जादू से अपने विरोधियों को परास्त कर लेगा.

दांडी यात्रा के बाद अंग्रेज़ों का दमन बढ़ गया, लेकिन कांग्रेस की लीडरशिप इसके लिए तैयार थी. स्वर कोकिला सरोजिनी नायडू और लौहपुरुष पटेल ने जनता का हौसला कम नहीं होने दिया. और फिर वह मंज़र भी एक अमेरिकी पत्रकार वेब मिलर ने देखा, जब सत्याग्रहियों को पुलिस ने लाठियों से खुद के थक जाने की हद

तक पीटा. उसने अपनी रिपोर्ट में दुनिया को बताया कि कैसे भारत की ज़मीन पर मनुष्यता को झकझोर देने वाला नया राजनीतिक प्रयोग सफल हो रहा है. किसी भी सत्याग्रही ने पीटने वाले को पलटकर नहीं मारा. मिलर की दर्दनाक रिपोर्ट ने तथाकथित सभ्य पश्चिमी देशों को झकझोर कर रख दिया. अंग्रेज़ बदनाम हो रहे थे. अंग्रेज़ी राज का कच्चा चिट्ठा खुल रहा था. एक ऐसी भीड़ को पीटा जा रहा था, जो निहत्थी थी. भीड़ की अगली पंक्ति चोट खाकर गिरती और पिछली अपने आप आगे आ जाती. पास ही में एक झोंपड़ी पहले से बनी हुई थी, जहां घायलों को उठाकर ले जाया जा रहा था. मिलर लिखते हैं कि 18 लोगों को तो उठाकर ले जाया गया, लेकिन 42 को मैंने ज़मीन पर लहूलुहान हालात में कराहते देखा. वे अपने उठाए जाने का इंतज़ार कर रहे थे. इंतज़ाम की भारी कमी थी. जब मिलर के लिए देख पाना असहनीय हो गया तो वे घटनास्थल से हट गये. मिलर की रिपोर्ट को भारत में बैठे ब्रिटिश टेलिग्राफ ऑपरेटर्स ने सेंसर करना चाहा, लेकिन उनकी करतूत को एक्सपोज़ करने की धमकी मिलते ही वे मजबूरन शांत बैठ गए. कहते हैं कि उस स्टोरी को दुनिया भर के करीब डेढ़ हजार अखबारों में जगह मिली.

भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल ने अपनी पुलिस के खूनी कारनामे पर खत लिखकर सफाई दी. उन्होंने लिखा कि कुछ लोगों को मामूली चोटें आई हैं. पत्रकार मिलर ने बाद में अस्पताल जाकर घायलों का हाल देखा और बताया कि 320 घायलों को तो उसने अकेले ही गिना. कई के सिर फूटे थे, कई पेट में लातें लगने की वजह से कराह रहे थे. न जाने कितने ही बेहोश पड़े थे. दो की तो मौत भी हो गई थी.

एक साल तक पूरा देश नमक कानून तोड़ता रहा. न अंग्रेज़ी पुलिस के लाठी डंडों से कोई डरा, न कोई गिरफ्तारी के खौफ में आया. गांधी के मंत्र पर पूरा देश मुग्ध होकर चल रहा था. हताश परेशान ब्रिटिश सरकार ने आखिरकार गांधी को रिहा किया और लंदन में आयोजित दूसरी गोलमेज कॉन्फ्रेंस में चलने के लिए मनाया. देश भर की जेलों में 60 हजार सत्याग्रही नमक कानून तोड़ने के चलते कैद हुए थे. अनोखा तथ्य है कि जिस दिन ये कानून गांधी जी ने तोड़ा, उस दिन किसी की भी गिरफ्तारी नहीं हुई थी. ये भी जानकारी में जोड़ लीजिए कि महज़ हाथ में रेत उठा लेने से नमक नहीं बना था, लेकिन वह एक प्रतीक था. इस पूरी यात्रा में शामिल लोगों में से अधिकतर 20 से 30 साल की उम्र के बीच में थे.

भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया में दांडी यात्रा की खबर फैल गई. बाद में इस यात्रा की ऐतिहासिक अहमियत मानी गई. आज दांडी यात्रा को दुनिया की सबसे प्रभावशाली राजनीतिक यात्राओं में एक माना जाता है.

गांधी इस यात्रा को बेहद अनुशासन से चलाने के इच्छुक थे, इसलिए कांग्रेसियों के बजाय उन्होंने यात्रा के लिए साबरमती आश्रम में रहने वाले अपने अनुयायियों को चुना. पूरी यात्रा शानदार योजना बनाकर पूरी हुई. गांधी जी के जत्थे से आगे-आगे कुछ लोग दौड़ लगाकर आगे के गांवों में पहुंचते थे. वे तय करते थे कि शाम को सत्याग्रही कहां ठहरेंगे या फिर बापू गांव में लोगों को कहां संबोधित करेंगे. यात्रा में शामिल लोगों ने सफेद खादी पहनी थी, इसलिए लोगों ने इसे 'सफेद नदी' भी कहा. कई बार गांव से लोग भी उस जत्थे में जुड़ जाते और पूरा रेला 2 मील तक फैल जाता. 'रघुपति राघव राजा राम' का भजन गाता इंसानों का समुद्र पूरी ताकत से दांडी की ओर बढ़ता जा रहा था, जिसकी लहरों में अंग्रेज़ी कानून एक एक कर बह रहे थे. यात्रा के दौरान लाखों लोगों ने गांधी जी का भाषण सुना. न जाने कितने पत्रकारों को उन्होंने इंटरव्यू दिए. विदेशी पत्रकारों के अलावा बंबई की तीन सिनेमा कंपनियों ने उनकी यात्रा को कवर किया, जिसकी वजह से गांधी नाम यूरोप से लेकर अमेरिका तक फैल गया. उसी साल टाइम्स पत्रिका ने महात्मा गांधी को मैन ऑफ द ईयर घोषित किया. लोगों ने उस यात्रा के प्रभाव में अपने सरकारी पदों से इस्तीफे दे दिए. रास्ते भर में ढोल-नगाड़ों से उनका स्वागत हुआ. दांडी पहुंचे सत्याग्रहियों का स्वागत पचास हज़ार लोगों ने किया.

कितनी हैरानी की बात है कि गांधी की दांडी यात्रा को लेकर शुरू में गवर्नर जनरल इरविन कतई परेशान नहीं हुए थे. उन्होंने लंदन के लिए लिखे एक खत में कहा भी था कि नमक आंदोलन उतना प्रभावशाली नहीं कि उनकी नींद उड़ जाए. खुद कांग्रेस के आला नेता नमक को लेकर किसी आंदोलन को छेड़ने में संकोच कर रहे थे. वे बड़े मुद्दे उठाना चाहते थे, मगर गांधीजी जानते थे कि नमक पर लगा टैक्स सबसे भारी गरीबों पर ही पड़ रहा है. वे चाहते थे कि आंदोलन का असर देश के सबसे पिछड़े तबके तक पहुंचे और इसके लिए सबसे मुफीद उन्हें नमक पर लगे टैक्स का मुद्दा लगा. अंग्रेजी राज के कुल टैक्स का 8% से ज्यादा हिस्सा इसी नमक टैक्स से इकट्ठा हो रहा था. दांडी से उठी लहर ने आखिर में अंग्रेजों के साथ-साथ कांग्रेसी नेताओं को भी गांधी की दूरदृष्टि का लोहा मानने को मजबूर कर दिया था. ❑

'गांधी सम्मान' पुरस्कार

सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम ने गांधी विचार के क्षेत्र में अनुकरणीय एवं प्रेरक योगदान को मान्यता एवं प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से 'गांधी सम्मान' पुरस्कार की शुरुआत वर्ष 2021 से करने का निर्णय किया है। इस पुरस्कार की घोषणा प्रत्येक वर्ष गांधी जयंती 2 अक्टूबर को की जायेगी। पुरस्कृत व्यक्ति या संस्था को 'गांधी सम्मान' के साथ एक लाख रुपये की नकद राशि भी दी जायेगी।

पुरस्कार के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने हेतु एक समिति बनायी जायेगी। किसी से भी पुरस्कार के लिए आवेदन करने को नहीं कहा जायेगा।

पुरस्कार हेतु श्रीमती चित्रा वर्मा, पत्नी श्री मदन मोहन वर्मा, ग्राम-रसूलपुर, पोस्ट-खासपुर, तहसील-टांडा, जिला-अम्बेडकरनगर-224190 (उत्तर प्रदेश) ने राशि उपलब्ध कराने का वचन दिया है। सर्व सेवा संघ चित्रा वर्मा के परिवार के प्रति आभारी है।

दांडी मार्च और वेब मिलर

एक विदेशी युद्ध संवाददाता, जिसने दिखाई दुनिया को अहिंसा की ताकत

❑ अरुण कुमार त्रिपाठी

मिलर की रिपोर्ट पूरी दुनिया के लिए पत्रकारिता के ताकत की नुमाइंदगी करती है। वेब मिलर की रिपोर्ट पढ़कर पूरी दुनिया के राजनेताओं और बौद्धिकों ने यह महसूस किया कि जो अंग्रेजी साम्राज्य अपने को सभ्य बताता है, वह कितना क्रूर और असभ्य है।

आज जब भारत के किसान आंदोलन को कवर करने और उस पर टिप्पणी करने के बारे में देशी और विदेशी का भेद और विवाद खड़ा किया जा रहा है, तब यह याद दिलाना जरूरी है कि किस तरह एक विदेशी संवाददाता ने महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह को पूरी दुनिया के फलक पर प्रस्तुत करके भारत की आजादी की लड़ाई को नैतिक सम्मान दिलाया। इस संवाददाता का नाम था वेब मिलर, जो अमेरिका का मशहूर युद्ध संवाददाता था।

वेब मिलर का स्मरण आज इसलिए भी जरूरी है कि भारत सरकार आजादी के अमृत महोत्सव की तैयारी में 12 मार्च को दांडी मार्च के 91 साल पूरे होने पर उसके स्मरण में कई कार्यक्रम शुरू कर रही है। ऐसे मौके पर उस व्यक्ति का नाम याद करना जरूरी है, जिसने उस आंदोलन में प्रकट हुई भारतीयों की अहिंसक शक्ति और अंग्रेजों की अनैतिक व पाशविक शक्ति का अंतर पूरी दुनिया के सामने स्पष्ट किया।

यह वेब मिलर की कवरेज का ही कमाल था कि दुनिया के तमाम राष्ट्राध्यक्षों और राजनेताओं की राय अंग्रेजी साम्राज्य के बारे में बदलने लगी और भारत की आजादी के प्रति उनके मन में सहानुभूति उत्पन्न होने लगी।

जिसने भी 1982 में आई रिचर्ड एटनबरो की गांधी फिल्म देखी है, उसे उस फिल्म में दिखाए गए विन्स वाकर नामक संवाददाता का चरित्र याद है। उस संवादादाता ने बंबई के बाहर स्थित धरसाड़ा के नमक कारखाने के बाहर सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में हुए नमक सत्याग्रह की रिपोर्टिंग की थी। फिल्म में खबर भेजते समय वह फोन पर कहता भी है कि अंग्रेजी राज का संयम टूट गया है, लेकिन उनका संयम बना हुआ है।

फिल्म में उस भयानक दृश्य को बेहद मार्मिक ढंग से फिल्माया गया है। वह सारा दृश्य दरअसल वेब मिलर की रिपोर्ट पर ही आधारित है। बाद में थामस वेबर ने 1997 में ऑन द साल्ट मार्च नामक चर्चित पुस्तक लिखी। उसमें भी वेब मिलर की रपटों का ही हवाला है। दरअसल नमक सत्याग्रह के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूरता का अध्ययन तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक वेब मिलर की रपट न देखी जाए।

गांधी के दांडी मार्च के दौरान कई देशी विदेशी संवाददाता थे, लेकिन धरसाड़ा सत्याग्रह का जो जीवंत वर्णन वेब मिलर ने किया है, वह कोई और शायद ही कर पाएगा। वजह यह भी है कि उस समय वे वहां मौजूद अकेले विदेशी संवाददाता थे। अन्याय और अत्याचार को उजागर करने में और सत्य को दुनिया की आंखों में उंगली डालकर दिखाने में विदेशी संवाददाताओं का क्या योगदान होता है, यह अगर समझना हो भारत की आजादी की लड़ाई को कवर करने आए लुई फिशर, वेब मिलर, विलियम शरर, विन्सेंट सीन और मारग्रेट बर्क ह्वाइट जैसे संवाददाताओं के कामों को समझना बहुत जरूरी है।

वेब मिलर ऐसे अमेरिकी युद्ध संवाददाता थे, जिनके काम का दुनिया भर के पत्रकार लोहा मानते थे। वे यूनाइटेड प्रेस के संवाददाता थे। उन्होंने महज 49 साल की उम्र में अमेरिकी सेना के पंचो विला अभियान, प्रथम विश्व युद्ध, स्पेन के गृह युद्ध, इथियोपिया-इटली युद्ध और रूस-फ्रांस युद्ध की रिपोर्टिंग की। उन्होंने हिटलर तथा मुसोलिनी का इंटरव्यू लिया और एक बार अगवा भी किए गए।

जब उन्हें भारत में चल रहे नमक सत्याग्रह की रिपोर्टिंग के लिए कहा गया तो सिर्फ एक दिन का समय लेकर वे तैयार हो गए। वे 16,000 मील की यात्रा करके 15 दिन में भारत पहुंचे। इस बीच फारस की खाड़ी के ऊपर उड़ते हुए उनका विमान इतना गर्म हो गया कि उसके काकपिट में धुंआ भरने लगा। विमान की इमरजेंसी लैंडिंग हुई, लेकिन किसी तरह बचते बचाते वे भारत पहुंच ही गए। भारत में भी उनकी खबर को बाहर भेजे जाने में तमाम बाधाएं डाली गईं, लेकिन आखिर कर वे लड़े और खबर बाहर गई और उसने पूरी दुनिया में तहलका मचाया।

वेब मिलर जब भारत पहुंचे, तब तक महात्मा गांधी गिरफ्तार हो चुके थे, क्योंकि गांधी ने धरसाड़ा के नमक डिपो पर धावा बोलने की घोषणा की थी। गांधी को दांडी से पांच मील दूरी पर स्थित कराड़ी की झोपड़ी से पांच मई की सुबह गिरफ्तार किया गया। वे वहां से वायसराय लार्ड इरविन को पत्र लिखने की तैयारी कर रहे थे। गांधी की गिरफ्तारी की खबर से वेब मिलर बहुत निराश हुए। उन्होंने सोचा कि आंदोलन के जिस नायक को कवर करने

आए थे, वह तो गिरफ्तार हो गया, अब कैसे खबर बनेगी। लेकिन तभी उनसे एक सत्याग्रही ने बताया कि 21 मई (1930) को बंबई के पास स्थित धरसाड़ा के नमक कारखाने पर सत्याग्रह का कार्यक्रम है। सत्याग्रही रस्से लेकर जाएंगे और कारखाने के बाहर लगे कंटीले तारों को उखाड़ देंगे।

वेब मिलर के लिए यह सुनहरा अवसर था। उन्होंने अपनी रिपोर्टिंग से इस घटना को विश्व इतिहास का एक अध्याय बना दिया। विलियम शरर लिखते हैं कि हालांकि वेब मिलर रिपोर्टिंग के समय अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखे हुए थे, लेकिन उनकी खबरों ने पूरी दुनिया को झकझोर दिया।

धरसाड़ा सत्याग्रह की रिपोर्टिंग करते हुए मिलर ने लिखा, ''मैंने 18 सालों में 22 देशों में रिपोर्टिंग की है। इस दौरान मैंने तमाम जनविद्रोह, दंगे और सैन्य विद्रोह देखे, लेकिन भारत जैसे भयानक दृश्य मैंने कभी नहीं देखे। पश्चिमी दिमाग, जो हिंसा के बदले हिंसा देखने का अभ्यस्त है, उसके लिए यह सब चौंकाने वाली घटना थी। वह सब देखकर मेरी भावनाओं को लग रहा था, जैसे कोई बेजुबान जानवरों को पीट रहा हो। मैं आधा क्रोध और आधे अपमान से भर गया। कभी कभी तो दृश्य इतना दर्दनाक था कि मेरे भीतर उसे देखने का साहस नहीं बचा और मैंने मुंह फेर लिया।''

उस घटना का वर्णन करते हुए मिलर ने 21 मई 1930 के अपने डिस्पैच में लिखा है कि सरोजिनी नायडू भाषण दे रही थीं और 2500 लोगों को नमक के डिपो पर धावा बोलने के लिए प्रेरित कर रही थीं। वे कह रही थीं कि गांधी का शरीर जेल में है, लेकिन उनकी आत्मा हमारे साथ है। प्रदर्शनकारी आधा मील चल कर आए थे। थोड़ी दूर पर प्राथमिक चिकित्सा के लिए कैंप लगा हुआ था। सामने 400 पुलिस वाले लाठी लिए तैयार थे और उनके अलावा 25 राइफल धारी पुलिस वाले भी थे।

जब आंदोलनकारियों का एक जत्था रस्सी और कटर लेकर आगे बढ़ा तो पुलिस वालों ने लोहबंद लाठियों से मारकर उनके सिर फोड़ दिए, लेकिन किसी ने हाथ नहीं उठाया। स्वयं सेवक स्ट्रेचर लेकर आए और घायलों को लिटा कर ले गए। स्ट्रेचर पर बिछे कंबल उनके खून से लथपथ हो रहे थे। इस तरह कई जत्थे घायल हुए और उन्हें उठाकर चिकित्सा शिविरों में ले जाकर मरहम पट्टी की गई, लेकिन पुलिस की लाठियां खाकर जमीन पर गिरने वाले लोग न तो चीख रहे थे और न ही अपना बचाव करने की कोशिश कर रहे थे। उनमें ज्यादातर गुजरात के कालेज के विद्यार्थी थे। वे अंग्रेजी बोल रहे थे। मुझसे भी उन्होंने अंग्रेजी में बात की। धरसाड़ा में मैं अकेला विदेशी संवाददाता था। मुझे अपनी गाड़ी में ले जाने के लिए कोई स्थानीय ड्राइवर तैयार नहीं हुआ, क्योंकि मैंने विदेशी कपड़े पहने थे और भारत में विदेशी कपड़ों के बायकाट का आंदोलन चल रहा था।''

मिलर ने इस तरह 2000 शब्दों की स्टोरी बनाई। उसे अमेरिका टेलीग्राम करने के लिए दिया, लेकिन उनके पास एक छोटे से कागज पर पेंसिल से लिखी हुई एक अज्ञात व्यक्ति की परची आई कि वह स्टोरी टेलीग्राम नहीं की गई। वेब मिलर इस रुकावट से नाराज हुए और दफ्तर गए। वहां उन्होंने कहा कि यह खबर गांधी के विद्रोह की सबसे बड़ी खबर है। मैं इसे पूरी दुनिया में अच्छी तरह बताऊंगा, भले ही मेरे फिर भारत आने पर रोक लगा दी जाए। आखिरकार उनकी रिपोर्ट गई और दुनिया भर के डेढ़ हजार अखबारों में छपी। उस रिपोर्ट को अमेरिकी कांग्रेस में भी पढ़ा गया। उसे अंतरराष्ट्रीय मीडिया ने भी कवर किया।

उसे पढ़कर भारत की आजादी और महात्मा गांधी के जबरदस्त विरोधी, अनुदार नेता विन्सटन चर्चिल ने कहा, 'नमक सत्याग्रह ने (हमारे राज के विरुद्ध) इतनी अवमानना और अवज्ञा उत्पन्न की है, जितनी एशिया की धरती पर कदम रखने के बाद हमने कभी नहीं महसूस की।

मिलर की रिपोर्ट पढ़कर दुनिया के राजनेताओं और बौद्धिकों ने यह महसूस किया कि जो अंग्रेजी साम्राज्य अपने को सभ्य बताता है, वह कितना क्रूर और असभ्य है। इस तरह भारत की आजादी की लड़ाई का पूरी दुनिया में नैतिक परचम लहरा उठा। गांधी विश्व स्तर के नेता बन गए। बाद में नमक सत्याग्रह से ही प्रेरित होकर अमेरिका के काले लोगों के नेता मार्टिन लूथर किंग ने भी अपने आंदोलन की योजना बनाई।

वेब मिलर का निधन 1940 में हो गया लेकिन एक निर्भीक संवाददाता ने अपनी खबर से दुनिया को बता दिया कि भारत की आजादी की लड़ाई का क्या मतलब है। ऐसे में जब हम भारत की आजादी का 74वां वर्ष मनाने जा रहे हैं, तो क्या पत्रकारिता के स्तर पर देशी और विदेशी का विभाजन करना उचित है?

जब भी हम इस तरह का विभेद करते हैं तो न सिर्फ पत्रकारिता की उस महान परंपरा को नकारते हैं, जो हमारी आजादी की लड़ाई के साथ खड़ी थी, बल्कि इस दौर में भी सत्य को देखे और दिखाए जाने की संभावना को अवरुद्ध करते हैं। वेब मिलर की मृत्यु 1940 में 49 साल की उम्र में हो गई। उन्हें अपनी श्रेष्ठ पत्रकारिता के लिए पुलित्जर पुरस्कार भी मिला। क्या आज भारत उनका स्मरण करके आजादी की लड़ाई में उनके योगदान के लिए उन्हें सम्मानित करेगा? ❑

प्रकाशकीय घोषणा-पत्र

(फार्म-4, नियम-8 के अनुसार)

प्रकाशन स्थल	: सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी
प्रकाशन अवधि	: पाक्षिक
मुद्रक का नाम	: श्री आनन्द जैन
नागरिकता	: भारतीय
पता	: भेलूपुर, वाराणसी
प्रकाशक का नाम	: अरविन्द अंजुम
नागरिकता	: भारतीय
पता	: सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी
संपादक का नाम	: बिमल कुमार
नागरिकता	: भारतीय
मालिक का नाम	: सर्व सेवा संघ
पता	: सर्व सेवा संघ राजघाट, वाराणसी

मैं अरविन्द अंजुम एतदद्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। **–अरविन्द अंजुम**

प्रकाशक के हस्ताक्षर

दांडी मार्च

स्मारकों में अंकित आंदोलन की गाथा

❑ डॉ. प्रभात कुमार सिंघल

भारत के इतिहास में महात्मा गांधी की एक यात्रा ने बदलाव की ऐसी बयार चलाई की उसने पूरे भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध जन संघर्ष का व्यापक आंदोलन खड़ा कर दिया। उन्होंने इस यात्रा से बता दिया कि किस प्रकार किसी को झुकने या मजबूर करने के लिए जन आंदोलन खड़ा किया जा सकता है। यह वाकया भारत में अंग्रेजों के शासन के समय का है। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने नमक विरोधी कानून के विरोध में दांडी यात्रा निकाली थी। यह यात्रा अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से समुद्रतटीय गांव दांडी तक 78 व्यक्तियों के साथ पैदल निकाली गई। इसे नमक मार्च और दांडी सत्याग्रह भी कहा जाता है। यह अंग्रेजों द्वारा लागू नमक कानून के विरुद्ध सविनय कानून को भंग करने का कार्यक्रम था। अंग्रेजी शासन ने नमक का उत्पादन और विक्रय करने पर भारी कर लगा दिया था। नमक जीवन के लिए आवश्यक वस्तु होने से इस कर को हटाने के लिए गांधी जी ने यह सत्याग्रह चलाया।

दांडी तक की दूरी तय करने में उन्हें 24 दिन लगे और इस यात्रा में पूरे रास्ते हजारों लोग जुड़ते चले गए। गांधी जी ने 6 अप्रैल, 1930 को कच्छ भूमि में समुद्रतल से एक मुट्ठी नमक उठाया था। इस मुट्ठी भर नमक से गांधी जी ने अंग्रेजी हुकूमत को जितना सशक्त संदेश दिया था, उतना मजबूत संदेश शायद शब्दों से नहीं दिया जा सकता था। कानून भंग करने के बाद सत्याग्रहियों ने अंग्रेजों की लाठियाँ खाई थीं, परंतु पीछे नहीं मुड़े थे। आंदोलन में सी. राजगोपालचारी, पंडित नेहरू आदि नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। ये आंदोलन पूरे एक साल तक चला और 1931 को गांधी-इर्विन के बीच हुए समझौते के साथ खत्म हो गया। इसी आन्दोलन से सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत हुई थी। इस आन्दोलन ने संपूर्ण देश में अंग्रेजों के खिलाफ व्यापक जनसंघर्ष को जन्म दिया था।

इस मार्च में गांधी के साथ आने वालों में सभी वर्गों और जातियों के लोग शामिल थे। ब्राह्मणों और हरिजनों ने एक साथ मार्च किया। गांधी को 5 मई को गिरफ्तार किया गया था लेकिन इससे पहले वे न केवल भारत में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक लहर पैदा कर चुके थे। उस समय में टाइम पत्रिका ने अपने 31 मार्च के अंक में कवर पर गांधीजी की तस्वीर छापी थी। इतिहास की अधिकांश किताबों में इस बड़ी घटना के बारे में बताया गया है और इतिहासकारों ने इसका बहुत विस्तार से अध्ययन किया है।

स्मारक

आज की युवा पीढ़ी के दिमाग में इस घटना और इसके महत्व को स्थापित करने के लिए 91 साल पहले हुई उस ऐतिहासिक यात्रा के केंद्र पर उन स्मृतियों को सहेजने के लिए एक स्मारक बनाया गया है। राष्ट्रीय नमक सत्याग्रह स्मारक (नेशनल साल्ट सत्याग्रह मेमोरियल) में गांधीजी की अगुआई में मूल रूप से यात्रा की शुरुआत करने वाले 79 दांडी यात्रियों की सिलिकॉन कांस्य प्रतिमाओं, यात्रा के 24 दिनों की संख्या के प्रतीक के रूप में यात्रा की कथाएं कहते 24 भित्तिचित्रों और कई अन्य गतिविधियों से उस महान आंदोलन की कथा को जीवंत करने के सार्थक प्रयास हुए हैं।

यह स्मारक भारत के भीतर नमक बनाने और उसकी बिक्री पर ब्रिटिश सरकार की मनमानी कर वसूली के खिलाफ सविनय अवज्ञा आंदोलन को गरिमामय तरीके से याद करता है। यहां पत्थर की दीवार पर सोमलाल प्रागजीभाई पटेल, आनंद हिंगोरानी और हरिभाई मोहानी के अलावा और भी बहुत-से ऐसे दांडी यात्रियों के नाम खुदे हैं, जो गांधी के साथ इस यात्रा के आरंभ से अंत तक बने रहे। प्रत्येक मूर्ति पर मूर्तिकार का नाम भी अंकित है। इस समूह में सबसे युवा 16 वर्षीय विपुल ठक्कर का नाम भी नजर आता है।

स्मारक में दांडी यात्रियों की सिलिकॉन ब्रांज की मूर्तियां 42 मूर्तिकारों ने बनाई हैं, जिनमें अलग-अलग देशों के नौ मूर्तिकार शामिल थे। भित्तिचित्र और सिलिकॉन कांस्य का ढांचा लगभग दो दर्जन कलाकारों ने तैयार किया था।

मेमोरियल में गांधी की पांच मीटर ऊंची एक प्रतिमा है, जिसके हाथ में छड़ी है और उनकी शॉल की प्रत्येक तह को बड़े कलात्मक रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसे मुंबई के प्रसिद्ध मूर्तिकार सदाशिव साठे ने बनाया है, जो फिलहाल नई दिल्ली के टाउन हॉल उद्यान में लगी है। इस मूर्ति में गांधी के हाथों की छड़ी से लेकर क्रीज और फोल्ड तक बेहद प्रभावी हैं। एक अन्य मूर्ति में स्टील के दो हाथ बने हैं। जमीन से 40 मीटर ऊपर उन हाथों ने 2.5 टन का क्रिस्टल थाम रखा है, जो नमक का प्रतीक है। स्मारक के भीतर औद्योगिक हीटरों से लैस नमक के 14 बर्तन लगे हैं, जिसमें कोई भी समुद्र का पानी डालकर, उससे केवल एक मिनट में नमक बना सकता है। करीब 15 एकड़ के स्मारक के बीचोबीच 14,000 वर्ग मीटर में बनी खारे पानी की एक कृत्रिम झील उस समुद्र तट का प्रतीक है, जहां गांधी ने अपना विरोध दर्ज कराया था।

यहां शोधकर्ताओं के लिए एक पुस्तकालय और गेस्ट हाउस बनाया गया है। भित्ति चित्रकारों ने सत्याग्रह से जुड़ी कहानियों पर गहराई से शोध कर उनसे जुड़ी छोटी-छोटी कहानियों पर चित्र बनाये हैं। नमक सत्याग्रह कैसे एक ऐतिहासिक घटना बन गया, ये भित्तिचित्र दर्शकों को समझने के लिए अवसर प्रदान करते हैं। स्मारक में 41 सौर पेड़ लगाए गये हैं, प्रत्येक पेड़ में पत्तों के आकार वाले 12 सौर पैनल फिट किए गए हैं, जो ऊर्जा के स्रोत के रूप में सौर ऊर्जा के लिए गांधी की रुचि का प्रतीक हैं। इनसे 182 किलोवाट बिजली का उत्पादन होता है। यह स्मारक वास्तव में महान घटना के महान व्यक्तित्व को श्रद्धाजंलि है। ❑

आठ अप्रैल

बोधगया भूमि आंदोलन का आरम्भ : एक संस्मरण

❑ सुशील कुमार

बोधगया का शंकर मठ किसी जमाने में हजारों एकड़ जमीन का जमींदार हुआ करता था। कहते हैं कि सबसे पहले इस मठ को 150 एकड़ जमीन दी थी शेरशाह सूरी के किसी वंशज ने। इसके बाद बदलते समय के साथ मठ का मालिकाना फैलाव 30 हजार से अधिक कृषि और गैर कृषि जमीनों तक होता चला गया। इलाके के दलित, खासकर भुइयां (मुसहर) जाति के दलित, मठ की इन जमीनों पर बंधुआ मजदूर होते थे। शेरघाटी बाराचट्टी, बोधगया और मोहनपुर प्रखंडों में मठ ने अपनी कचहरियां बना रखी थीं, जिनके माध्यम से इन मजदूरों पर पूरी तरह नियंत्रण रखा जाता था। 8 अप्रैल 1978 को जेपी द्वारा गठित छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के नेतृत्व में शंकर मठ के कब्जे से भूमि मुक्त कराने का आंदोलन शुरू हुआ। इसे भारतीय उपमहाद्वीप का पहला भूमि मुक्ति आंदोलन माना जाता है। इस संघर्ष में भूमिहीन मजदूर हरावल की तरह शामिल हुए। इस निर्णायक लड़ाई के बाद 1881 में लगभग 1500 एकड़ जमीन मुक्त कराके मजदूरों में बांट दी गयी और अंततः 1987 में तत्कालीन मुख्यमंत्री बिन्देश्वरी दूबे के समय में लगभग 35000 बीघा जमीन भूमिहीनों के बीच बांटी गयी। यह आंदोलन महिला आंदोलनों के लिए एक नजीर बना, क्योंकि महिला मजदूरों ने इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर भागीदारी भी की और आंदोलन से मुक्त हुई जमीनों पर अधिकार भी हासिल किये। बोधगया आंदोलन में भाग लेने वाले छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के कुछ क्रांतिकारी साथियों ने सर्वोदय जगत के पाठकों के लिए अपने कुछ अनुभव, कुछ संस्मरण लिखकर भेजे हैं। आइये, अपने इतिहास के इन लोमहर्षक पन्नों से रूबरू हों। **-सं.**

आठ अप्रैल वाहिनी धारा और संपूर्ण क्रांति आंदोलन के लिए एक यादगार और महत्वपूर्ण तारीख है. 18 मार्च, 1974 को छात्रों के विधानसभा घेराव और उस पर हुए पुलिसिया दमन के बाद पूरे बिहार में सत्ता/प्रशासन की दहशत व्याप्त हो गयी थी. जेपी ने उस समय तक आंदोलन का नेतृत्व नहीं संभाला था, पर उस दमन के खिलाफ आठ अप्रैल 1974 के दिन उन्होंने एक मौन जुलूस का नेतृत्व किया. सबके मुंह पर काली पट्टी थी और हाथ पीछे बंधे हुए थे. बैनर पर लिखा था- क्षुब्ध हृदय है, बंद जुबान. इस मौन जुलूस ने छात्र आंदोलन को नयी दिशा, गंभीरता और गरिमा प्रदान कर दी थी. इसके बाद बिहार आंदोलन के विभिन्न चरण, आपातकाल, सत्ता परिवर्तन आदि के घटनाक्रम इतिहास में दर्ज हैं.

1977 में केंद्र और राज्य में सत्ता परिवर्तन के बाद पूरे देश और दलों ने संपूर्ण क्रांति और व्यवस्था परिवर्त्तन के आंदोलन को पृष्ठभूमि में धकेल दिया था. शांतिमय संपूर्ण क्रांति को आगे ले जाने के लिए लोकनायक जेपी के पास खुद के द्वारा गठित युवा संगठन छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के अलावा दूसरा कोई संगठन नहीं था. जेपी के निर्देश पर संघर्ष वाहिनी ने सघन क्षेत्रों को चुन कर संपूर्ण क्रांति के प्रयोग का निर्णय लिया. इसी क्रम में बोधगया का चयन किया गया, जहां के शंकर मठ के पास लगभग 18 हजार एकड़ जमीन की अवैध जमींदारी तब भी कायम थी. आस-पास का इलाका भूमिहीन मजदूरों का था.

आपातकाल में भी इस अवैध जमींदारी के खिलाफ सर्वोदयी नेता जगन्नाथन जी के नेतृत्व में सत्याग्रह चला था और गिरफ्तारियां भी हुईं थीं. वाहिनी ने इसी आंदोलन का सूत्र पकड़ कर जेपी द्वारा उद्घोषित 'शांतिमय वर्ग संघर्ष' का प्रयोग करने का निर्णय लिया. इस प्रयोग/आंदोलन की शुरुआत के लिए 1978 में आठ अप्रैल का ऐतिहासिक दिन ही चुना गया।

आठ अप्रैल को बिहार (अविभाजित) के अलावा अन्य राज्यों के भी हजारों की संख्या में संघर्ष वाहिनी के कार्यकर्ता (युवक-युवतियां) बोध गया पहुंचे. इस वृहद प्रदर्शन के माध्यम से बोधगया महंथ को ज्ञापन सौंपकर अनुरोध किया गया कि 'वे अपने कब्जे की अवैध जमीनें गरीबों और भूमिहीनों में बांट दें, अन्यथा गरीब और भूमिहीन जनता आपके तथाकथित देवी-देवताओं को झूठा साबित करके अपने हक पर अपना अधिकार कायम कर लेगी.' महंथ ने उस अनुरोध की अनदेखी कर दी और बोधगया शांतिमय भूमि संघर्ष का आगाज हो गया.

इस ऐतिहासिक शुरुआत ने आने वाले वर्षों में परिवर्तन के एक अनूठे रास्ते की इबारत लिख दी. 'बोध गया भूमि संघर्ष' ने न सिर्फ महंथ के अवैध कब्जे की 10 हजार एकड़ जमीन पर भूमिहीन गरीबों को अधिकार दिलाया, बल्कि हथियारों और हिंसक वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता के 'मिथ' को तोड़ दिया.

आठ अगस्त 1979 : आंदोलन में एक नया मोड़

इस शांतिमय वर्ग संघर्ष के क्रम में आठ अगस्त 1979 का दिन बहुत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक महत्व रखता है. इस दिन वाहिनी के 'शांतिमय वर्ग संघर्ष' के सिद्धांत को हिंसा की सीधी चुनौती का सामना करना पड़ा था. 'शांतिमय वर्ग संघर्ष' की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न खड़े हो गये थे. इस घटनाक्रम के प्रत्यक्ष भागीदार और भुक्तभोगी होने के नाते उस दिन का संस्मरण जीवंत और प्रभावोत्पादक है।

वाहिनी की राज्य समिति की ओर से बोधगया में रह कर आन्दोलन को संगठित करने के लिए राज्य कार्यालय प्रभारी प्रभात को भेजने का निर्णय लिया गया. तब से प्रभात कुमार (पटना) और वाहिनी के स्थानीय साथी कारू भाई बोधगया इलाके के चार प्रखंडों में रहकर निरंतर गांवों के भूमिहीनों को संगठित करने का काम करने लगे. शेष जिलों से राज्य समिति के नियोजन के तहत अन्य साथी लगातार उस क्षेत्र में जाते रहते थे. प्रभात के बोधगया जाने के बाद प्रदेश कार्यालय का प्रभार मुझे सौंपा गया. कुछ दिनों बाद मुझे भी बोधगया जाकर कार्य करने का निर्देश मिला.

अगस्त 1979 के प्रथम सप्ताह में

चौपारण में तत्कालीन हजारीबाग जिले की वाहिनी का तीन दिवसीय प्रशिक्षण शिविर था. उस शिविर में मुझे और पटना की साथी कंचन को प्रशिक्षक के रूप में जाना था. उस शिविर के बाद हमें बोधगया में रुक कर भूमि संघर्ष में योगदान देना था.

छह अप्रैल 1979 को मैं और कंचन चौपारण से बाराचट्टी आये और वहां से कुछ दूर मोहनपुर प्रखंड के लई गांव में रुके. दूसरे दिन, यानी सात अप्रैल को हम दोनों बोधगया आये और मस्तीपुर गांव में ठहरे, जहां पहले से ही कारू भाई, कुमुद और प्रभात मौजूद थे. उस समय चारों प्रखण्डों में महंथ की भूमि पर बहिष्कार चल रहा था, यानी आह्वान था कि मठ की जमीन पर न हम खुद हल चलायेंगे, न ही महंथ को खेती करने देंगे. इस आंदोलन का इतना व्यापक असर हुआ कि मठ की सामंती सत्ता हिल गयी, उसका ढांचा चरमरा गया. चार प्रखण्डों में मठ के कब्जे की लगभग दस हजार एकड़ जमीन परती रह गयी. सूचना मिल रही थी कि मठ के गुर्गों द्वारा कहीं-न-कहीं जबर्दस्ती हल चलाया जायेगा. स्थानीय स्तर पर इसके प्रतिकार के लिए बोधगया में आठ अगस्त को एक वृहद प्रदर्शन करने का निर्णय लिया गया था.

उस प्रदर्शन में लोगों को इकट्ठा करने के लिए प्रभात और कुमुद सबेरे ही आसपास के गांवों में चले गये. मस्तीपुर में सिर्फ मैं, कारू भाई और कंचन रह गये थे.

हिंसक आक्रमण और गिरफ्तारी

मस्तीपुर गांव से पश्चिम लगभग आधे किलोमीटर की दूरी पर मठ की एक कचहरी (मठ की उप-शाखा) थी. उसके आसपास मठ की जमीन थी, जहाँ मठ के कारिंदों के द्वारा हल चलाया जाने लगा. मस्तीपुर के लोगों में बेचैनी बढ़ने लगी. उन्हें लगने लगा कि अगर थोड़ी भी जमीन महंथ द्वारा जोत ली जाती है, तो आंदोलन की हार हो जायेगी. लोग जमीन पर जाकर उन्हें रोकने के लिए उतावले हो रहे थे. लेकिन हम लोग उन्हें रोक रहे थे कि जब प्रभात के साथ अन्य गांवों के लोग इकट्ठा हो जायें, तब चला जायेगा. लोग बेचैन होते हुए भी हमारी बात मान कर शांत थे. इसी बीच कंचन की तबीयत कुछ खराब होने लगी. कंचन को लेकर मैं बोधगया बाजार चला आया, जो गांव से लगभग आधे किलोमीटर की दूरी पर था. गांव में वाहिनी के सिर्फ कारू भाई रह गये. लौटते समय हमने बम विस्फोट और गोलियां चलने की आवाजें सुनीं. हम दौड़ते हुए मठ की कचहरी के सामने स्थित 'डाइजोक्यो मंदिर' की खाली जमीन पर पहुंचे. वहां का नजारा देखकर हमारे होश उड़ गये. रामदेव मांझी, पांचू मांझी और जानकी मांझी खून से लथपथ जमीन पर पड़े हुए थे. रामदेव का पेट बम से फट गया था और अंतड़ियां बाहर आ गयीं थीं, जिसे वह अपने हाथों से समेट कर पेट के अंदर डालने का प्रयास कर रहा था. यह दृश्य याद आने पर आज भी रोंगटे खड़े कर देता है. पांचू को गोली लगी थी और वह मरणासन्न स्थिति में था. ये दोनों मजदूर साथी कुछ देर बाद ही शहीद हो गये. जानकी मांझी को भी जांघ में गोली लगी थी. तीनों को स्थानीय अस्पताल लाया गया, दो साथियों को तो बचाना संभव नहीं था, लेकिन जानकी मांझी को पहले गया, फिर पटना लाया गया, जहां उनका महीनों तक इलाज चलता रहा, तब उनकी जान बच पायी.

घटना कुछ इस तरह से घटी कि वाहिनी के साथी हतप्रभ रह गये. हमारे बोधगया बाजार जाने के बाद ग्रामीणों के उतावलेपन और जोश को कारू भाई संभाल नहीं पाये. लोग उनकी अनसुनी करते हुए लाठी, डंडे और अन्य परंपरागत हथियार लेकर मठ की कचहरी की तरफ बढ़ चले. समय करीब एक बजे का होगा. तब तक प्रभात और कुमुद नहीं लौटे थे. जापानी मंदिर के बाद वाली सड़क को जैसे ही ग्रामीणों ने पार किया, मठ की कचहरी में पहले से तैयार मठ के गुंडों ने बमों और बंदूकों से इन पर आक्रमण कर दिया. हमारे पहुंचने के पांच मिनट पहले यह घटना घट चुकी थी और मठ के गुंडे भाग रहे थे. उसी समय हमने प्रभात और कुमुद को भी देखा. वे भी तब तक पहुंच गये थे. हमारे पहुंचते ही थाने का दारोगा भूपेन्द्र सिंह अपने लाव लश्कर के साथ पहुंच गया. हमने उसे कुछ बिना विस्फोट हुए बम और गोलियों के खोखे दिखाये. दारोगा मठ की कचहरी पहुंचा, वहां कुछ लोगों पर डंडे चलाते हमने देखा. हम सभी घायल साथियों को अस्पताल ले जाने के लिए उन्हें खाट पर रख रहे थे. कारू भाई कहीं दिख नहीं रहे थे. दरअसल घटना घटते ही वे दौड़कर थाने को सूचना देने चले गये थे और उन्हें थाने वालों ने वहीं बैठा लिया था. घायल साथियों को उठाने के क्रम में मैंने देखा कि दारोगा प्रभात को पुलिस जीप में बैठा कर ले जा रहा है. मैंने उसे रोका और पूछा कि अकेले हमारे साथी को कहां ले जा रहे हैं ? दारोगा ने कहा कि थाने ले जा रहे हैं, केस लिखवाना है न. मैंने कहा कि हम सभी थाने चल रहे हैं, आप अकेले किसी साथी को नहीं ले जा सकते. दारोगा ने कहा कि 'ठीक है, आप भी चलिये'. मुझे भय था कि कहीं पुलिस वाले प्रभात का एनकाउंटर न कर दें. मैं भी गाड़ी में बैठ गया. तब तक मेरे पीछे-पीछे सीवान का साथी फिरंगी भी जीप में बैठ गया. अब उस भयानक वातावरण में वाहिनी की सिर्फ दो महिला साथी कंचन और कुमुद रह गयीं.

थाने में पिटाई

थाना पहुंचे तो देखा कि कारू भाई पहले से वहां मौजूद हैं. दारोगा गुस्से से आग बबूला हो रहा था. नाम-पता पूछने के बाद प्रभात को गाली देते हुए चिल्लाया, 'आंख दिखाता है?' प्रभात ने कहा कि मेरी तो आंख ही ऐसी है. इतना सुनते ही दारोगा प्रभात पर डंडे से वार करने लगा. मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि 'आप मार नहीं सकते, जो कानूनी कार्रवाई करनी है, वह करिये'. इतना सुनते ही दारोगा का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया. बोला, 'यही नेता लगता है.' इसके बाद मेरे ऊपर कितने डंडे पड़े, याद नहीं. दारोगा ने हमारी जाति पूछी. प्रभात ने कहा, 'हमलोग जाति नहीं मानते.' इस पर एक सिपाही ने कहा 'सर, डोम-चमार होगा सब, मारिये बदमाशों को.' उसके बाद हम दोनों की जम कर धुलाई हुई. कारू भाई पर एक डंडा पड़ा, तो उन्होंने कहा कि 'मैं मास्टर हूं, बच्चों को पढ़ाता हूं.' फिर उन्हें ज्यादा मार नहीं लगी. हालांकि बकौल कारू भाई 'पिटाई के समय मैं कई बार बेहोश हो गया. पानी डाल कर होश में लाया जाता और फिर डंडे बरसने लगते.' बेहोशी की हालत में मेरे मुंह से भी गाली निकलती थी. पिटाई से मेरे दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के बीच का भाग फट गया

था. सिर और गर्दन में भी भयंकर चोट आयी थी. फिर बेहोशी की हालत में ही घसीट कर सब के साथ मुझे हाजत में बंद कर दिया गया. कुछ देर बाद होश आया तो देखा कि कारू भाई, प्रभात, फिरंगी के अलावा मस्तीपुर गांव के बिपत पासवान और रामबली मांझी भी साथ में बंद हैं. कुछ देर बाद मठ के चार-पांच कारिंदों को भी हमारे साथ ही बंद कर दिया गया.

जेल यात्रा

बिहार आन्दोलन के क्रम में और आपातकाल में मीसा के तहत जेल जाने का अनुभव तो था, पर इस बार की जेल यात्रा कुछ और थी. आंदोलन और मीसा के तहत गिरफ्तारी में हम जेल में शहंशाह की तरह रहते थे. सोने के लिए शानदार इन्तजाम, खाना बनाने के लिए खानसामा - ये सब इस बार नादारत था. यह 'जनता पार्टी की सरकार का दौर था. थाने से हमें मजिस्ट्रेट के सामने लाया गया, वहां से गया सेंट्रल जेल भेज दिया गया. जेल में मठ वालों को और हम लोगों को अलग-अलग बैरक में भेजा गया. दूसरे दिन सुबह थप्पड़ों के जोर पर हमसे जेल में घास साफ करायी जाने लगी. तभी हमारा और प्रभात का नाम पुकारा गया कि जेल गेट पर चलना है. फटेहाल और घायल स्थिति में ही हम सुपरिंटेंडेंट के ऑफिस में गये तो देखा कि बिहार के स्वास्थ्य मंत्री लालमुनी चौबे सुपरिंटेंडेंट की कुर्सी पर बैठे हैं. उनसे मेरा पहले से भी परिचय था. हमारी दशा देखकर मंत्री महोदय सुपरिंटेंडेंट पर भड़क उठे. कहा, 'ये किस हालत में आपने इन्हें रखा है? नौकरी करनी है कि नहीं? आपको पता है, ये लोग कौन हैं? इन्हीं के बूते हमारी सरकार चल रही है. इन्हें तुरंत जेल के अस्पताल में भर्ती कर इलाज करवायें, कपड़ों की व्यवस्था करें. ये सब आज और अभी होना चाहिए, तब तक मैं यहीं हूं.'

इसके बाद तो जेल में हमारी खातिरदारी शुरू हो गयी, अस्पताल में इलाज चला, कपड़े आदि भी मिल गये. बाद में हम में से कुछ साथियों को अलग साफ सुथरे सेल में रहने की व्यवस्था भी हो गयी. ❑

मील का पत्थर साबित हुआ आंदोलन

❑ **कारू भाई**

8 अप्रैल के दिन ही 1978 में छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी के नेतृत्व में बोधगया शंकराचार्य मठ की अवैध जमीन के खिलाफ एक प्रदर्शन हुआ था। उस प्रदर्शन में बिहार के करीब करीब सभी जिलों से वाहिनी के युवा साथियों ने भाग लिया था। इस प्रदर्शन में 40 से भी ऊपर गांव के ऐसे भूमिहीन लोगों की भागीदारी हुई थी, जो मंहथ की विभिन्न कचहरियों में मजदूर थे। इस दिन मठ के सामने जो प्रदर्शन हुआ, उसमें यह संकल्प लिया गया कि मठ ने सीलिंग के अतिरिक्त जमीन, जो अवैध तरीके से कब्जा कर ली है, उसे छोड़ दे, नहीं तो अवैध जमीन को हम लोग भूमिहीनों के बीच बांटने का संकल्प लेते हैं। उस दिन इस आशय का एक पत्र पढ़ा गया था। मंहथ के मैनेजर 500 एकड़ जमीन बांटकर इस आंदोलन से छुटकारा पाना चाहते थे। सरकार और मंहथ के लोग द्वारको भाई के पास समन्वय आश्रम आए। संघर्ष वाहिनी के साथियों ने उस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। संघर्ष वाहिनी का नेतृत्व जानता था कि इन लोगों ने हजारों एकड़ फर्जी और बेनामी जमीन सरकार और कानून की नजर से बचाकर अवैध तरीके से कब्जा कर ली है। समझौता नहीं होने की स्थिति में आंदोलन के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

दूसरे दिन से ही मजदूरों ने आंदोलन का बिगुल फूंक दिया। लयी गांव के लोगों ने गोसाईं पेसरा मठ की जमीन पर आंदोलन शुरू भी कर दिया, लेकिन संघर्ष वाहिनी के साथियों को बहुत दिनों के बाद पता चला। उस आंदोलन को मठ के लोगों ने किसी तरह से दबा दिया। हमारे साथी अभी बोधगया मंहथ के खिलाफ आंदोलन करने की रणनीति ही बना रहे थे और मजदूरों ने एक कदम आगे बढ़कर अपनी मंशा जाहिर कर दी। प्रदर्शन के बाद अधिकांश लोग अपने जिलों में लौट चुके थे। वाहिनी के कुछ साथी प्रदर्शन के बाद रुक गये थे। जो साथी प्रदर्शन की तैयारी में आये थे और जिन्होंने पहले भी गांव गांव घूमकर प्रदर्शन में लोगों को आने के लिए सूचना दी थी, उन्होंने पुनः गांव में जाने का निर्णय लिया। प्रारंभिक तौर पर जिन साथियों का नाम याद आता है, उनमें से दो नाम महेश (बाद में नाम बदलकर मंथन हो गया) और मुरारी का नाम शामिल है।

मैं उस समय समन्वय आश्रम में काम कर रहा था। मुझे प्रदर्शन में शामिल होने पर रोक थी, पर मिलने पर रोक नहीं थी। मैंने गांव से कुछ लोगों की लिस्ट बनाकर मुरारी और मंथन को दे दी थी, ताकि संपर्क साधने और गांव में ठहरने में दिक्कत नहीं हो। अप्रैल से जून तक कौन साथी आये और गये, मुझे पूरी तरह से याद नहीं है। जून के बाद मैं आश्रम छोड़कर वाहिनी के काम में पूर्णकालिक सदस्य हो गया।

यह संगठन बनाने का दौर था। 4, 5 और 6 जून को कटोरवा गांव में शिविर और सम्मेलन रखा गया था। शिविर में ऐसे युवाओं को बुलाया गया था, जो गांव के अगुआ थे। दो दिनों तक आंदोलन जारी रखने की रणनीति पर बात होती रही। इस शिविर और सम्मेलन में भाग लेने के लिए विशेष रूप से किशन पटनायक और उनकी पत्नी वीणा जी भी आई हुई थीं। महुआ के दो पेड़ों के नीचे सम्मेलन सम्पन्न हुआ। दो विषयों पर चर्चा खास तौर से हुई, समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था आंदोलन के लिए कितनी बाधक है? तथा आगे आंदोलन की दृष्टि और दिशा क्या होगी?

सम्मेलन में जात पांत के बंधन को ढीला करने की रणनीति पर काम करने का फैसला किया गया। जमीन पर असहयोग आंदोलन करने का निर्णय लिया गया। वहीं से यह नारा भी निकला कि 'न जमीन जोतेंगे और न किसी को जोतने देंगे।' परिणाम हुआ कि धान बोने से लेकर धान रोपाई तक यह आंदोलन तेजी से करीब चालीस गांवों तक फैल गया। लगभग छः हजार एकड़ जमीन में धान की बुआई नहीं हो पाई। जहां- जहां मठ के द्वारा जबरन बुआई की गई, वहां पर उन्हें भारी विरोध का सामना करना पड़ा। 8 अगस्त 1979 को मस्तीपुर में मठ के गुण्डों के द्वारा जबरन जमीन जोतने बोने का प्रयास किया गया, मजदूरों द्वारा रोकने पर गोली और बम से हमला किया गया, जिसमें दो साथी रामदेव और पांचू शहीद हो गए तथा जानकी गोली से घायल हो गए, लेकिन आंदोलन रुका नहीं, और तेज हो गया। सुप्रीम कोर्ट ने आखिर फर्जी और बेनामी जमीन को अवैध करार कर दिया। यह जीत शांतिमय आंदोलनों के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुई। ❑

बोधगया
आठ अप्रैल के बहाने

❑ श्रीनिवास

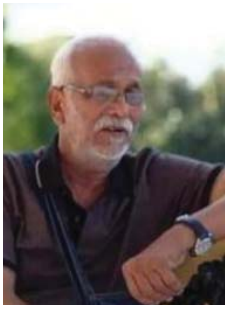

वर्ष 1978 में आठ अप्रैल को बोधगया में मठ की अवैध जमींदारी के खिलाफ शांतिमय संघर्ष की घोषणा की याद अमिट है. मैं इस मौके पर उस आंदोलन से जुड़े कुछ भिन्न प्रसंगों के संस्मरण आपके साथ बांटना चाहता हूं.

वो तंगी, वो फाकामस्ती

जहां तक याद है, आंदोलन के आगाज के बाद संभवतः जुलाई 1974 में मैं करीब दो महीने के लिए बोधगया गया था. पटना कार्यालय से शेखवारा जाने तथा उसी गांव के प्रदीप सिंह उर्फ ललन सिंह और कारू भाई से मिल कर आगे काम करने को कहा गया था. दोनों मिले. कारू भाई के साथ गांव गांव घूमने लगा. जीवन में पहली बार टोलों (भुइयां टोली) में जाना, रहना और घरों में भोजन करना होता था, वह निहायत नया अनुभव था. हर तरफ, यहां तक कि भोजन में भी, सूअर की गंध फैली और बसी हुई. ईमानदारी से कहूं तो उस लगभग पूरे प्रवास में रुचि से भरपेट भोजन शायद ही कर सका. एक जिद थी कि खा लेता था. पर मौका मिलते ही उस गंध से मुक्त होना चाहता. हालांकि मैंने और मुझ जैसे अनेक ने धीरे धीरे खुद को वहां के माहौल के अनुरूप ढाल लिया था.

जो भी हो, गनीमत हुई कि उस प्रवास से पांच-छह दिन बाद हम शेखवारा लौटे, जहां हमारा पड़ाव/कार्यालय, जेपी-बिनोबा के भूदान के दौर में बना खपरैल का आश्रम, गांव से कुछ अलग था. खुली हवा, पर्याप्त जगह. खटमल के अलावा कोई कष्ट नहीं. वहां रहते हुए भी भुइयां टोली में मिलने जुलने और खाना खाने जाते थे. पर कई बार खुद आश्रम में बना कर खाते. आटा खरीद लाते. मोटी मोटी रोटियां बनतीं. कभी सब्जी भी. पर अक्सर आश्रम के बाशिंदे उपेंद्र जी और उनकी पत्नी 'जुझारू' कुंती के सौजन्य से पर्याप्त लाल मिर्च और लहसुन मिल जाता. दोनों को आग में पका कर करुआ तेल मिला कर, उसके साथ रोटी खाने में जो स्वाद था, उसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता.

पैसे की तंगी तो रहती ही. पर मस्ती की कमी नहीं थी. भोजन मुफ्त, यात्रा पैदल, और जरूरत ही क्या थी. आज सोच कर भी अचरज होता है कि उतने कम में हम कैसे रह लेते थे. फिर भी, एकदम कड़की हो जाने पर मांगना भी पड़ता. तो ऐसे ही हालात में एक दिन कारू भाई या उपेंद्र जी की टुटही साइकिल से हम गया चले. कारू भाई गया (वजीरगंज) के ही हैं. उनके कुछ मित्र-परिचित गया में थे, जिनसे कुछ मिलने की उम्मीद थी. जेब में कुल सवा या डेढ़ रुपये थे.

बस से गया का किराया पचास पैसे से अधिक नहीं रहा होगा, पर तब वह भी बहुत था. इसलिए साइकिल पर गया पहुंचने तक साइकिल पंक्चर हो गयी. बनवाने में शायद चार आने खर्च हुए. जिन मित्रों से (दो उपेन्द्र थे- एक लम्बे, दूसरे थोड़े गठीले) मिले, वहां हल्का नाश्ता- भींगा चना- तो मिला, पर उनकी जेब भी तंग थी. हम खाली हाथ लौटे.

शाम हो गयी. लेकिन दोमुहान के पास एक गांव में एक परिचित संपन्न किसान के घर गये. पराठा-सब्जी और शानदार चाय से स्वागत हुआ. उस दिन की सारी थकान और मायूसी काफूर हो गयी. ऐसी थी हमारी फाकामस्ती.

जब किसी ने नहीं पूछा हमें

हम हमेशा नये गांवों में आंदोलन का विस्तार करने का प्रयास करते रहते थे. जिन गांवों में मठ की जमीन होती, वहां आसानी होती, अन्य में नहीं, भुइयां बहुल गांवों में भी नहीं. ऐसा ही एक बेहद निराशाजनक अनुभव सुनिए।

तब हमारा शिड्यूल हमेशा बहुत व्यस्त नहीं होता था. खाली समय में कुछ नया करने का, नये गांव में जाने का प्रोग्राम बनाते रहते. उस दिन (तारीख/महीना याद नहीं) हम बोधगया में थे. बिड़ला धर्मशाला में रुकना/सोना तय था.

कारू भाई का ही आइडिया था. हम तीन, चार बजे अपराह्न तक बोधगया के पूरब, नदी (उसका नाम निरंजना है या लीलाजन, हमेशा भूल जाता हूं. फल्गु नहीं है, इतना जान गया हूं, जो आम धारणा है.) के उस पार सटे हुए गांव (नाम याद नहीं) पहुंच गये. खुली जगह में खेल रहे बच्चों के पास गये. उनके जरिये और बच्चों को इकट्ठा किया. कुछ नया खेल सिखाने लगे. कारू भाई हमेशा से अच्छे गायक रहे हैं. उन्होंने बच्चों को कुछ नये गीत सिखाये. सबने साथ गाया. गपशप के बहाने हमने उनकी जानकारी और रुचि का आइडिया लिया. जेपी, गांधी, भगत सिंह आदि और अपने आंदोलन की चर्चा भी की. इस बीच गांव के कुछ बड़े भी आये, परिचय हुआ, हालचाल पूछा और चले गये.

लेकिन अब शाम ढलने लगी थी और बच्चे एक एक कर जाने लगे. अंधेरा बढ़ने लगा. हम उम्मीद कर रहे थे कि कोई न कोई घर चलने, कुछ खा लेने की और रात को ठहर जाने की पेशकश करेगा. ताकि रात में ग्रामीणों से बात हो सके. पर ऐसा नहीं हुआ.

सारे बच्चे चले गये. उस खुले मैदान में हम दो ही बच गये. हमारे बीच निराशाजनक मौन था, साथ में यह मूक सवाल भी कि अब? क्या किसी दरवाजे पर याचक बन कर जाना मुनासिब होगा?

जहां तक याद आता है, रात का करीब आठ बज चुका था. गनीमत थी कि चांद की रोशनी थी. हमने लौटना तय किया. आधे घंटे में हम बोधगया बाजार पहुंच गये. किसी होटल में खाकर धर्मशाला चले गये. किसी अन्य गांव में ऐसा रूखा स्वागत और अनुभव हुआ हो, याद नहीं. ❑

यादों में बोध-गया आंदोलन

❑ चेतना

मुझे याद है कि सुशील जी उन दिनों मुंबई आये थे। अलग - अलग संस्थाओं को आमंत्रित करके सुशील जी के साथ ग्रुप-डिस्कशन रखा गया था। तब सुशील जी ने हम सभी को बोध-गया आंदोलन के बारे में विस्तारपूर्वक बताया।

सब कुछ जानकर मैं और अलका आंदोलन से काफी प्रभावित हुए। हम दोनों आपस में चर्चा करते थे और हैरान होते थे ये देखकर कि देश तो आज़ाद हो गया, फिर भी हमारे यहाँ 'बंधुआ-मज़दूर' हैं, जो काम तो करते हैं पर बदले में उन्हें पैसा नहीं दिया जाता। हम दोनों इस समस्या को अपने अर्थशास्त्र की पढाई से जोड़कर समझने की कोशिश कर रहे थे। हम दोनों डॉ. उषा मेहता से मिलने गए। डॉ. उषा मेहता मणि-भवन गांधी संग्रहालय की प्रमुख थीं।

मैंने और अलका ने उषा मेहता से पूछा कि देश आज़ाद होने के बाद भी बंधुआ-मजदूर की प्रथा क्यों ज़िंदा है और ये तो गुलामी के समान है। हमारी बातें सुनकर उनकी आँखों में पानी भर आया। तभी उनकी सहकर्मी ने कहा- 'हम लोगों ने तो देश को आज़ादी दिला दी, अब संघर्षवाहिनी के सदस्यों का काम है देश की जनता को देश की समस्याओं से आज़ादी दिलाना। जयप्रकाश ने इसीलिए तो आंदोलन चलाया है और आप लोगों को सामने खड़ा किया है।'

वहां से लौटते वक्त मैंने अलका से कहा कि मुझे बोध-गया ज़रूर जाना है, पर न जाने कब मौका मिलेगा। उसी दौरान राजेंद्र नगर, पटना में संघर्षवाहिनी की एक मीटिंग होने वाली थी, उसमें भाग लेने के लिए मेरा नाम चुना गया। मैं बहुत खुश और उत्साहित थी।

मीटिंग में कारू भाई भी शामिल थे। उनके अलावा मज़दूर किसान समिति के नेता मांझी जी भी वहां मौजूद थे। मुझे उनके पास बैठकर बातें करने का बहुत मन था पर मुझे उनकी बोली-भाषा समझ नहीं आ रही थी।

अगली सुबह जिस ज़मीन को संघर्षवाहिनी के लोगों ने कब्ज़े में लिया था, उस जमीन पर मज़दूर-किसान द्वारा धान बोने का कार्यक्रम होने वाला था। मैंने उससे पहले कभी धान की खेती नहीं देखी थी, बल्कि मैं उससे पहले किसी गाँव में भी नहीं गयी थी। दूसरे दिन सुबह पांच बजे संघर्षवाहिनी और मज़दूर किसान समिति के कार्यकर्ता बड़ी-बड़ी लाठी लिए सभी को उठाने आये यह कहते हुए कि 'चलो-चलो हमें धान बोने जाना है'। अँधेरे में जब मेरी नज़र उनकी लाठियों पर पड़ी तो मेरे मन में एक सवाल आया, 'अगर मठ की तरफ से गोलियां चली तो क्या ये लाठियां काम

आएँगी'। सवाल मन में उठ ही रहा था कि मैंने देखा, बहुत से लोग जिनमें काफी महिलाएं भी थीं, धान बोने के कार्यक्रम में शामिल होने के लिए घरों से बाहर आ रहे थे। सभी नारा लगा रहे थे, 'जो जमीन को जोते-बोये, वह जमीन का मालिक होये'। सभी महिलाएं गाना गा रही थीं और मैं उनके साथ गाने की कोशिश कर रही थी। धान के पौधे लेकर हम लोग खेतों की तरफ चल दिए। गाना गाते-गाते और नारों की गूँज के बीच हमने धान बोना शुरू किया।

बोध-गया आंदोलन में शामिल होकर मुझे काफी गर्व महसूस हुआ। ख़ास तौर पर यह जानकर कि अब बंधुआ मज़दूर इस जमीन के मालिक होंगे और फसल भी उनकी ही होगी।

कई वर्ष बीत गए उस बात को, पर वह वाकया मेरे ज़ेहन से नहीं गया। आज भी, जब कभी मान तालुका में सूखा पड़ता है तो हम मानदेशी फाउंडेशन की तरफ से जानवरों के पानी और चारे के लिए कैटल-कैंप चलाते हैं। सभी किसान और उनके परिवार एक जगह पर इकट्ठा होते हैं।

बोध-गया आंदोलन से जुड़ी और भी यादें हैं। मुझे सुबह-सुबह चाय पीने की आदत बहुत सालों से है। और पिपरगट्टी गाँव में दूध न होने के कारण सभी को बिना दूध की चाय पीनी पड़ती थी। मुझे याद है, मैं हर सुबह सभी से पूछती थी कि दूध कहीं मिलेगा क्या। एक दिन मैंने ज़िद् की कि किसी भी तरह हम गाँव से गया जायेंगे, क्योंकि मुझे दूध वाली चाय पीनी थी। साथ में संघर्षवाहिनी के कार्यकर्ता भी थे। रास्ते में कहीं हमें साइकिल रिक्शे से सफर करना था। मुझे बुरा लग रहा था कि हम सब बैठेंगे और रिक्शेवाला हमें ढोयेगा। श्रीनिवास जी ने मज़ाक में कहा, 'तुम बैठो, थोड़ी देर बाद तुम रिक्शा चलाना, और रिक्शाचालक बैठ जायेगा'। मैंने कहा, 'मैं तो नहीं चला सकती'। थोड़ी देर बाद श्रीनिवास जी ने सचमुच उस रिक्शेवाले से बैठने को कहा और बोले कि रिक्शा वे चलाएंगे। रिक्शावाला कहता रहा कि 'भाईजी आप बैठो मैं चलाऊंगा' पर श्रीनिवास जी ने उसकी एक न सुनी और रिक्शा चलाने लगे। यह देखकर मेरे मन में एक बात आयी कि श्रम-बंटवारे का इससे अच्छा उदाहरण क्या होगा। श्रम-बंटवारे से श्रम करने वाले को एक अलग सम्मान मिलता है। जैसे-तैसे हम लोग गया पहुँच गए और बड़े दिनों बाद मुझे दूध की चाय मिली। चाय पीकर हम लोग फिर से पिपरगट्टी के लिए रवाना हुए। बारहचित्ति ब्लॉक में मीटिंग हुयी और 5-6 दिन बाद हम लोग पहले पटना और फिर मुंबई के लिए निकले।

गया से मुंबई के सफर के दौरान मैं मणिमाला जी द्वारा कही पंक्ति, 'जो जमीन को जोते-बोये, वह जमीन का मालिक होये', याद कर रही थी और अपने गया के अनुभवों को

मन में दोहरा रही थी। गया में जब हम लोग धान बो रहे थे और महिलाएं गाना गा रही थीं, उस गाने की एक पंक्ति सुनकर मैंने उसका मतलब जानने की कोशिश की। पंक्ति थी-हमरे घर सुअर के बखौल बबुआ। इसका मतलब था- हमारे घर सुअर जहाँ रहते हैं, उस तरह के हैं। बोध-गया में मुझे पहली बार मुसहर जाति और भुइयां जाति के बारे में मालूम हुआ। आंदोलन के दौरान ये चर्चा शुरू हो गयी थी कि जो महिलाएं आंदोलन से जुड़ी हुई हैं, उनके नाम पर ज़मीन का पट्टा होगा, न कि उनके पति के नाम पर। ये बहुत स्पष्ट हो रहा था कि महिलाएं अपना अधिकार लेकर रहेंगी। ये देख कर मैंने तय किया कि मैं बोध-गया दोबारा आऊंगी, मुझे महिलाओं को ज़मीन की मिलकियत लेते हुए देखना है। मुझे याद है, मैं शाम को सभी महिलाओं के साथ बैठी थी, तभी मांजर देवी और उनकी बेटी कनक जी के पास आयी और कहा कि हमको ये जमीन का पट्टा लेना है। उनकी आंखों में जो चमक थी, उससे पता चल रहा था कि उनको विश्वास था कि वे अपनी ज़मीन लेकर ही रहेंगी। इस आत्मविश्वास ने मुझे और कटिबद्ध किया बोध-गया वापस आने के लिए।

गया की बात को काफी साल हो चुके हैं पर 'हमरे घर सुअर के बखौल बबुआ' यह पंक्ति आज भी मेरे मन में बार-बार आती है। जब कभी भी मैं बोध-गया आंदोलन की बात कहीं करती हूँ, तो इस पंक्ति का ज़िक्र आता ही है और हमेशा आता रहेगा। बोध-गया संघर्ष की विशेषता यह थी कि महिलाएं खुद उस आंदोलन से बराबरी से जुड़ीं। जमीन तो मिली ही और महिलाओं के नाम पर मिली। ये पूरे देश में और शायद विश्व में पहली बार हुआ था। इन महिलाओं ने और संघर्षवाहिनी के कार्यकर्ताओं ने महिलाओं के संपत्ति अधिकार का झंडा गाड़ दिया था। कारू जी ने जिन महिलाओं का नाम लिया, उन सभी ने बोध-गया में नेतृत्व किया था। न सिर्फ बोध-गया, बल्कि पूरे भारत में धारा 7/12 कानून भी बना। जो महिलाएं 'हमरे घर सुअर के बखौल बबुआ' गाती थीं, उनमें इतनी ताकत थी कि उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि वे अपने नाम पर जमीन का अधिकार ले सकती हैं। ❑

पटना, गया और शेखवारा

❑ सुनील तांबे

पटना के राजेन्द्र नगर में छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का कार्यालय था. ढूंढते हुए मैं उस कार्यालय में पहुंचा. उस समय अनिल प्रकाश वहां थे. हरे रंग का खादी का कुर्ता और सफेद पायजामा, अस्तव्यस्त दाढ़ी, बाल बढ़े हुए, आंख पर चश्मा और नजरों में क्रांति. उन्होंने मुझे बोधगया में चल रहे जमांदारी विरोधी आन्दोलन की जानकारी दी. इस आन्दोलन के बारे में मुझे टुटपुंजिया जानकारी थी, परंतु अनिल प्रकाश ने ज्यादा विस्तार से जानकारी दी. कार्यालय में अन्य कार्यकर्ताओं से परिचय हुआ. उनमें से एक विजय था. दोपहर के भोजन के लिए वह मुझे लेकर गया. राजेन्द्र नगर के नजदीक एक गली या लेन थी. वहां छोटी दुकान थी झोपड़ीनुमा. छोटी सी जगह में सत्तू की दो-चार बोरियां थीं, एक पानी का घड़ा था. कुछ प्याज और मिर्ची. दुकानदार जमीन पर ही बैठा हुआ था. ग्राहक भी जमीन पर ही बैठ कर खाते. एक थाली में सत्तू का आटा, उसे सानने के लिए पानी, साथ में चुटकी भर नमक, प्याज और मिर्ची. विजय बोला, हमलोग अक्सर यही खाते हैं. गरीबों की तरह ही हमें जीना चाहिए, ऐसी वाहिनी के कार्यकर्ताओं की धारणा थी.

जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति, डा. लोहिया की सप्तक्रांति ये सब उस समय जबर्दस्त चर्चा के विषय थे. दिनमान या किसी अन्य साप्ताहिक में, जेपी आन्दोलन मध्यम वर्गीय है, इस आशय का मत व्यक्त करने वाला लेख प्रकाशित हुआ था. अनेक छोटी-मोटी हिन्दी पत्रिकाएं उस समय वाहिनी कार्यालय में आती थीं. मैं नया था, इसलिए दो-चार प्रश्न पूछते हुए कार्यकर्ताओं की चर्चा सुन रहा था. विजय ने कहा कि पटना की सड़क पर किसी लड़की ने साइकिल चलायी तो समझ लो कि हो गयी क्रांति.

शाम को ट्रेन से गया जाना तय हुआ. दो कार्यकर्ताओं के साथ मैं रेलवे स्टेशन गया. रास्ते में ट्रेन रुकी. बंदूकधारी पुलिस ट्रेन के बाहर और प्रत्येक डब्बे में टीटीई. टिकटों की चेकिंग शुरू हुई. विदाउट टिकट जाने वाले भागने का रास्ता देख रहे थे. पुलिस उन्हें पकड़ रही थी. तो भी कुछ लोग भाग ही जा रहे थे. उनके पीछे एक पुलिस वाला बंदूक हाथ में लिए दौड़ रहा था. पुलिस वाले ने बंदूक उठायी. मैं सांस रोके बैठा रहा. विदाउट टिकट प्रवास करने के बदले मृत्युदंड? सुदैव कि उस पुलिस वाले ने गोली नहीं चलायी.

गया में हम राजेन्द्र आश्रम में थे. आश्रम बड़ा था, पर बिलकुल सुनसान था. गर्मी का दिन था, हम रात में छत पर ही सोये. वहां से शेखवारा गांव की ओर मेरी रवानगी हुई. वहां कारू से भेंट हुई. कारू शारीरिक रूप से गठीले थे. उन्होंने कहा कि जेपी मूवमेंट मध्यम वर्गीय ही था. उन्होंने बोधगया की जमींदारी और उसके विरुद्ध चल रही लड़ाई की जानकारी दी. गांव-गांव में महंथ के कार्यालय थे, जहां बंदूकधारियों की पहरेदारी थी. दूसरे दिन से गांव-गांव में कारू के साथ मीटिंग के लिए जाता रहा. मुझे वहां की भाषा समझ में आती थी, पर बोलने नहीं आता था. मुझे उनकी भाषा समझ में आती है, यह जानकर कारू को बहुत आश्चर्य हो रहा था. गांव वालों के प्रश्नों का उत्तर मैं बंबइया हिन्दी में देता था. कारू और मैं साइकिल से गांवों में मीटिंग के लिए जाते थे. खेतों में काम करने वालों के साथ खेतों में ही मीटिंग होती थी. मेरा काम स्रोता का होता. दोपहर का खाना खेतों में ही होता था. साइकिल हांकते हुए दूसरे गांव जाते थे. मैं और कारू एक दूसरे के साथ डबल सीट की सवारी करते थे. कारू मेरी अपेक्षा तगड़े थे, लेकिन मैं सहज रूप से उन्हें बैठाकर खेत की मेड़ों पर खुद साइकिल चलाता. उन्हें नहीं, पर मुझे तो साइकिल चलाना मुश्किल होता था, क्योंकि मैं पगडंडी पर साइकल चलाने का अभ्यस्त नहीं था. इस दरम्यान एक बार साइकल पंचर हो गयी. पंचर बनाने के लिए भी चार आने न मेरे पास थे, न कारू के पास. हाथ से साइकल खींचते हुए हम एक गांव में पहुंचे. वहां वाहिनी का कार्यालय था. मटके का ठंढा पानी पिया. कारू ने डब्बे से चुरमुरा और चना निकाला. दो-चार मुट्ठी चुरमुरा-चना, उसके ऊपर से लोटा भर ठंढा पानी. हमारा लंच हो गया. वहां साइकल का पंचर बना. साइकल हांकते हुए हम फिर आगे के गांव बढ़ चले. ❑

एक संतुलित सहजीवन के लिए सिर्फ स्त्री को ही नहीं, पुरुष को भी अपने पास वापस लौटना होगा

❑ प्रदीपिका सारस्वत

मुझे लगता रहा है कि स्त्रियाँ और पुरुष दो अलग-अलग प्रजातियाँ हैं. हमारा सहजीवन इन दोनों प्रजातियों को आगे बढ़ाने के लिए ज़रूरी है, पर हम एक जैसे नहीं हैं. हम एक-दूसरे को नहीं जानते. हम एक दूसरे को नहीं समझते. लेकिन यह तय है कि समृद्ध जीवन के लिए हमें एक-दूसरे के साथ सामंजस्य बनाना होगा. बिना इस सामंजस्य के अगर एक पलड़ा अधिक समय तक झुका रहेगा, तो सहजीवन प्रदूषित हो जाएगा.

यह कोई किताबी बात नहीं, इसे हम हर दिन अपने आस-पास देख सकते हैं. सहजीवन में सत्ता किसी एक के हाथ में नहीं हो सकती. दोनों के उत्तरदायित्व अलग हो सकते हैं, होंगे ही. उत्तरदायित्व का निर्णय कुशलताओं और क्षमताओं से होता है. स्त्री यदि अपनी शक्ति संतति के पोषण में लगा रही है, तो पुरुष का उत्तरदायित्व है सुरक्षा देना. यहाँ उत्तरदायित्व के अलग होने से अधिकार अलग नहीं हो सकते. अधिकार क्या हैं? आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति. आवश्यकताओं और इच्छाओं में अंतर है. अधिकार इच्छाओं के अनुसार मिलने लगेंगे तो फिर सहजीवन लड़खड़ाएगा. आवश्यकताएँ इन दोनों प्रजातियों की एक ही है. स्वास्थ्य हमारी पहली आवश्यकता है. इसमें शारीरिक पोषण से लेकर मानसिक पोषण तक सभी कुछ आता है. पर स्वास्थ्य के लिए भी संतुलित सहजीवन आवश्यक है. इस तरह देखें तो हमारे उत्तरदायित्व और हमारे अधिकार एक दूसरे के पूरक हुए.

क्या एक-दूसरे को जाने बिना एक स्वस्थ सहजीवन संभव है? क्या एक-दूसरे को जानना संभव है? कुछ भी जानने की शुरुआत स्वयं से ही हो सकती है. पर हम अपने आप को ही जानने का श्रम नहीं करते, फिर दूसरे को कैसे जान सकते हैं? मैं नहीं जानती कि उत्तर वैदिक काल की चार आश्रमों की व्यवस्था में स्त्रियों का क्या स्थान था, पर आज के उत्तर आधुनिक समय में बहुत सी स्त्रियाँ संतानोत्पत्ति के साथ-साथ वह सब कुछ कर रही हैं, जो पुरुष करता है. वे आज सुरक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर नहीं हैं. कम से कम आर्थिक और भौतिक सुरक्षा के लिए तो नहीं. मानसिक सुरक्षा के बारे में कुछ भी कहना जटिल होगा. पर यह तो कहा ही जा सकता है कि सहजीवन की परिकल्पना अपने मूल स्वरूप से बहुत दूर हो गई है.

प्रकृति हमें सिखाती है कि हर प्रक्रिया का एक चक्र होता है. ऋतुओं से लेकर हर जीवित वस्तु एक चक्र से गुज़रती है और गुज़रती रहती है. सहजीवन शायद एक चक्र से होकर ही एक संतुलित स्वरूप तक पहुँचा होगा. अब उसके विच्छिन्न हो जाने के बाद, हो सकता है कि स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के बिना ही जीवन प्रक्रिया को पूरा करने की संभावनाएँ तलाश रहे हों. जब वे जान जाएंगे कि जीवन को आगे ले जा सकना एक-दूसरे के बिना संभव नहीं है, तो वे शायद नए सिरे से सहजीवन को परिभाषित करेंगे. कर भी रहे हैं.

हर स्त्री और पुरुष के लिए फ़ैमिनिज्म शब्द के अलग-अलग मायने हैं. इसी तरह पितृसत्ता को भी हम में से हर एक अलग-अलग नज़र से देखता है. किसी के लिए स्कूल में पढ़ाए जाने वाले साधारण वाक्य — राम स्कूल जाता है और सीता खाना पकाती है — पितृसत्ता की बानगी हैं और किसी के लिए इन वाक्यों पर वास्तव में अमल होना भी सामान्य है. संतुलन का अभाव किसी में भी हो सकता है, स्त्री में भी और पुरुष में भी.

सत्ता या अधिकार किसी एक तरफ जाते हैं और लंबे समय के लिए जाते हैं, तो इससे आने वाला असंतुलन सिर्फ उसे ही प्रभावित नहीं करता, जिसके पास अधिकार नहीं हैं. यह असंतुलन अनावश्यक नियंत्रण लेने वाले को भी उतना ही प्रभावित करता है. दोनों ही अपने मूल स्वरूप को भूल जाते हैं. दोनों ही अपने आप से दूर चले जाते हैं, दो अलग-अलग ध्रुवों की ओर. यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि पुरुष यदि नियंत्रण अपने हाथ में ले सकता है तो क्या नियंत्रण लेना उसका मूल स्वभाव न हुआ?

इस प्रश्न के उत्तर में पुरुष को स्वयं अपने आप से पूछना होगा कि क्या वह इस नियंत्रण को पाकर वास्तव में समृद्ध हो सका है. क्षमताओं को देखें तो मनुष्य को देवों से भी ऊपर रखा गया है. उसके पास देव होने की क्षमता है, दानव होने की भी. उसके पास रजस् भी है, तमस् भी और सत्व भी. वह किसी भी ओर जा सकता है. पर यदि उसे मनुष्य ही रहना है तो मध्य में आना होगा. दानव होकर वह मानव को लभ्य सुख नहीं भोग सकेगा. देव होकर भी नहीं. मानव होने के लिए उसे अपने आपको जानना होगा. अपने आप को जानना अपने भीतर की स्त्री और अपने भीतर के पुरुष दोनों को जानना है. यदि भीतर उतरा जाए, तो वाक़ई ये दो प्रजातियाँ एक ही हो जाती हैं. जिन्होंने अपने आप को जानने का थोड़ा भी प्रयास किया है, उन्होंने यह ज़रूर जाना है.

इतिहास, जो हमारे बीते हुए पिछले मिनट तक आता है, हमें यदि बहुत कुछ बताता है, तो हम पर एक बोझ की तरह भी रहता है. एक स्त्री के तौर पर बहुत संभव है कि मैं पुरुष के हाथ में रही सत्ता के कारण शोषित महसूस करूँ. पर यदि चाहें तो हम इतिहास को जानकर भी उसके भार से मुक्त हो सकते हैं. इतिहास को वही बात बार-बार लिखते जाने से रोकने के लिए भी यह ज़रूरी है कि हम उसके भार से मुक्त हो जाएं. स्त्री भी और पुरुष भी. इतिहास से मुक्त होने का एक ही तरीका मैं जानती हूँ—जितना हो सके, वर्तमान में होना. यदि इस समय मेरा होना और मेरे निर्णय किसी अन्य सत्ता या उसके इतिहास से प्रभावित नहीं होते, तो मैं उस इतिहास और उस सत्ता दोनों से मुक्त हूँ. अब मैं अपने आप को जानने का कुछ प्रयास कर सकती हूँ.

मेरी बहुत सी स्त्री मित्र अक्सर एक ही बात कहती हैं. हम स्त्रियाँ एक-दूसरे को जितनी अच्छी तरह समझती हैं, पुरुष हमें कभी नहीं समझ सकते. मुझे उनकी बात से इन्कार नहीं है. एक लंबे समय से अपने-आप से दूर रही स्त्रियाँ अब अपने-आप को पढ़ रही हैं. वे देख रही हैं कि वे कहाँ खड़ी हैं, देख रही हैं कि पिछली सदियों ने उन्हें कहाँ-कहाँ चोट पहुँचाई है और उन्हें स्वस्थ होने के लिए क्या चाहिए होगा.

मैं अपने कई पुरुष मित्रों को भी ऐसी कोशिश करते देखती हूँ. पिछली सदियों के असंतुलन ने उन्हें भी क्षति पहुँचाई है. यह क्षति, स्त्रियों को पहुँची क्षति से ज़रा भी कम नहीं है, ज्यादा हो तो कहा नहीं जा सकता. उन्हें भी अपने-आप तक वापस आने के लिए बहुत चिकित्सा की ज़रूरत होगी. जब वे दोनों स्वस्थ हो जाएंगे, जब वे दोनों अपने आप तक लौट आएँगे, तो वे एक दूसरे तक स्वतः ही पहुँच जाएंगे. वे जब अपने आप को समझ सकेंगे, तब वे एक दूसरे को ज़रूर समझ पाएंगे. यह कोई दूर का स्वप्न नहीं है. जब हम दो लोगों को एक संतुलित सहजीवन में आगे बढ़ते देखते हैं, तो ये दो लोग ऐसे ही दो लोग होते हैं, जो सिर्फ एक दूसरे के साथ नहीं, अपने-आप तक लौट रहे होते हैं। ❑

'हे पुरुष! तुम टिटहरी की तरह पैर खड़ा कर आसमान को रोकने की कोशिश न करो'-राहुल सांकृत्यायन

❑ मनीषा पांडेय

9 अप्रैल राहुल सांकृत्यायन का जन्मदिन है. अपने 70 वर्ष लंबे जीवन में राहुल सांकृत्यायन ने खुद इतना लिखा और उनके निधन के बाद से पिछले 58 सालों में उन पर इतना कुछ लिखा गया है कि कुछ भी लिखने बैठो तो लगता है, इसमें नया क्या होगा. ऐसा क्या कहेंगे अब, जो पहले नहीं कहा गया. राहुल सांकृत्यायन पर वैसे तो बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन उनकी स्त्री दृष्टि के बारे में कम ही पढ़ने को मिलता है. कुछ कहानियों और नाटकों को छोड़कर राहुल सांकृत्यायन ने जेंडर पर अलग से कोई किताब या विमर्श तो नहीं लिखा, लेकिन सैकड़ों पृष्ठों में फैले उनके लेखन में औरतों के बारे में उनके विचार पढ़कर आपको अचंभा होगा कि आज से 80 साल पहले कोई व्यक्ति इस तरह लिख रहा था. मर्दवाद और पितृसत्ता पर तीखी चोट कर रहा था, मर्दों को कटघरे में खड़ा करके सवाल कर रहा था और स्त्रियों से कह रहा था कि तुम्हारी पूरी देह में गुलामी की ये जो सूइयां गड़ी हुई हैं, ये सब मर्दों की करतूत है. तुम इस उम्मीद में न रहो कि ये लोग उसे उखाड़ेंगे. ये चुभी हुई सुइयां औरतों को खुद उखाड़नी होंगी.

राहुल सांकृत्यायन की किताब 'घुमक्कड़ शास्त्र' में एक अध्याय है- 'स्त्री घुमक्कड़.' उस अध्याय की शुरुआत ही इन पंक्तियों से होती है-

'घुमक्कड़-धर्म सार्वदेशिक विश्वव्यापी धर्म है. इस पंथ में किसी के आने की मनाही नहीं है, इसलिए यदि देश की तरुणियां भी घुमक्कड़ बनने की इच्छा रखें, तो यह खुशी की बात है. स्त्री होने से वह साहसहीन है, उसमें अज्ञात दिशाओं और देशों में विचरने के संकल्प का अभाव है – ऐसी बात नहीं है. जहाँ स्त्रियों को अधिक दासता की बेड़ी में जकड़ा नहीं गया, वहां की स्त्रियां साहस-यात्राओं से बाज नहीं आतीं. अमेरिकन और यूरोपीय स्त्रियों का पुरुषों की तरह स्वतंत्र हो देश-विदेश में घूमना अनहोनी सी बात नहीं है.'

राहुल लिखते हैं, 'जहां तक घुमक्कड़ी करने का सवाल है, स्त्री का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष का. स्त्री क्यों अपने को इतना हीन समझे?'

तकरीबन 3,000 शब्दों के इस लंबे अध्याय में राहुल कहते हैं कि स्त्रियां किसी भी रूप में पुरुषों से कमतर मनुष्य नहीं हैं, उनके अधिकार बराबर हैं, उनका मन-मस्तिष्क-चेतना सब बराबर है और उन्हें भी उस मन-मस्तिष्क की उड़ान के लिए बराबर का आकाश मिलना चाहिए. लेकिन ये सब कहने के साथ वे स्त्रियों के जीवन से जुड़े कई बुनियादी सवाल भी उठाते हैं, जैसे पिता की संपत्ति में बराबरी का अधिकार.

राहुल लिखते हैं, 'स्त्रियों को भी माता-पिता की संपत्ति में दायभाग मिलना चाहिए. जब यह कानून पेश हुआ तो सारे भारत के कट्टरपंथी उसके खिलाफ उठ खड़े हुए. आश्चर्य तो यह है कि कितने ही उदार, समझदार कहे जाने वाले व्यक्ति भी हल्ला - गुल्ला करने वालों के सहायक बन गये. अंत में मसौदे को खटाई में रख दिया गया. यह बात इसका प्रमाण है कि तथाकथित उदार पुरुष भी स्त्री के संबंध में कितने अनुदार हैं.'

यहां राहुल सिर्फ उन मर्दों की बात नहीं कर रहे हैं, जो पुरातनपंथी और रूढ़िवादी हैं. जो अपनी चिता तक इस विश्वास के साथ जीते हैं कि स्त्री पुरुष की संपत्ति है और जो खुद किसी की संपत्ति है, उसकी संपत्ति में क्या हिस्सेदारी. स्त्री को आजादी नहीं, मर्द की छांह और सुरक्षा चाहिए. राहुल सांकृत्यायन ऐसे मर्दों को तो पहले ही खारिज कर देते हैं. यहां असल में वे आड़े हाथों ले रहे हैं उन मर्दों को, जिनके खाने के दांत और, दिखाने के और हैं. जो वैसे तो खुद को उदार और प्रगतिशील बताते हैं, बराबरी का राग अलापते हैं, लेकिन जब औरतों को संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी देने की बात आती है तो उनके पेट में मरोड़ होने लगता है, मियादी बुखार जकड़ लेता है. राहुल आखिरी पंक्ति में लिखते हैं, 'तथाकथित उदार पुरुष भी स्त्री के संबंध में कितने अनुदार हैं.'

राहुल इस लेख में विस्तार से स्त्री की उन सीमाओं का भी जिक्र करते हैं, जो समाज की नहीं, बल्कि प्रकृति की देन हैं. उसकी अपनी देह, जो ऐतिहासिक रूप से स्त्री की गुलामी की एक बड़ी वजह बनी. स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम और आकर्षण स्वाभाविक है, लेकिन प्रकृति की रचना कुछ ऐसी है कि उस प्रेम का परिणाम स्त्री को अंत में अकेले ही भुगतना होता है. राहुल लिखते हैं कि वह तो समाज की व्यवस्था कुछ ऐसी है कि उसने शादी का बंधन बनाकर मर्द को एक रिश्ते और जिम्मेदारी से बांध रखा है. अगर शादी का दायित्व नहीं होता तो कोई मर्द किसी स्त्री के साथ रिश्ते में टिकता ही नहीं और न कोई बच्चों की जिम्मेदारी उठाता. शादी के अंदर काफी हद तक मर्द ये करने को मजबूर होते हैं. राहुल ने 70 साल पहले ये किताब लिखी थी और आज 2021 में भी ये बात उतनी ही सच है. सामाजिक बंधन और मजबूरी न हो तो मर्दों में सहज रूप से ये मानवीयता और दायित्वबोध नहीं है.

'हां, पुरुष ही नहीं, प्रकृति भी नारी के लिए अधिक कठोर है. कुछ कठिनाइयां ऐसी हैं, जिन्हें पुरुषों की अपेक्षा नारी को उसने अधिक दिया है. संतति-प्रसव का भार स्त्री के ऊपर होना उनमें से एक है. वैसे नारी का ब्याह, अगर उसके ऊपरी आवरण को हटा

दिया जाय तो इसके सिवा कुछ नहीं है कि नारी ने अपनी रोटी-कपड़े और वस्त्राभूषण के लिए अपना शरीर सारे जीवन के निमित्त किसी पुरुष को समर्पित कर दिया है. यह कोई बहुत उच्च आदर्श नहीं है, लेकिन यह मानना पड़ेगा कि यदि विवाह का यह बंधन भी न होता तो भी संतान के भरण-पोषण में जो आर्थिक और कुछ शारीरिक तौर पर पुरुष भागी होता है, वह भी न लेकर वह स्वच्छंद विचरता और बच्चों की सारी जिम्मेवारी स्त्री के ऊपर पड़ती. उस समय या तो नारी को मातृत्व से इंकार करना पड़ता या सारी आफत अपने ऊपर मोल लेनी पड़ती.'

इस पैरा के अंत में वे लिखते हैं, 'यह प्रकृति का नारी के ऊपर अन्याय है, लेकिन प्रकृति ने कभी मानव पर खुलकर दया नहीं दिखाई, मानव ने उसकी बाधाओं के रहते उस पर विजय प्राप्त की.'

वे स्त्रियों के जीवन से जुड़ी इस सारी समस्या में मर्द की भागीदारी का जिक्र करने के बाद अंत में प्रकृति को ही इसके लिए जिम्मेदार ठहरा देते हैं. जबकि सच तो ये है कि अन्याय वह नहीं है, जो प्रकृति ने किया है, अन्याय वह है, जो समाज करता है. बच्चा पैदा करना कोई समस्या नहीं है, अगर बच्चे को पालना औरत की अकेले की जिम्मेदारी न हो. वह एक सम्मिलित सामाजिक श्रम हो. लेकिन इस तरह की साझेदारी की मांग करने के बजाय राहुल स्त्रियों से कहते हैं कि मैं तुमसे इंद्रिय निग्रह का आग्रह नहीं कर रहा हूं, लेकिन सोच लो कि बच्चा पैदा किया तो जीवन भर के लिए फंस जाओगी. इसलिए बहुत विचार करके अपनी राह चुनना.

राहुल लिखते हैं, 'जैसा मैंने कहा, प्रकृति की मजबूरी का अर्थ यह हरगिज नहीं है कि मानव प्रकृति के सामने आत्म-समर्पण कर दे. जिन तरुणियों को घुमक्कड़ी-जीवन बिताना है, उन्हें मैं अदर्शन की सलाह नहीं दे सकता और न ही ये आशा रख सकता हूं कि जहां विश्वामित्र-पराशर आदि असफल रहे, वहां स्त्री अवश्य सफल होगी. घुमक्कड़ तरुणी को यह समझ लेना चाहिए कि पुरुष यदि संसार में नए प्राणी के लाने का कारण होता है, तो इससे उसके हाथ-पैर कटकर गिर नहीं जाते. यदि वह अधिक उदार और दयार्द्र हुआ तो कुछ प्रबंध करके वह फिर अपनी उन्मुक्त यात्रा को जारी रख सकता है, लेकिन स्त्री यदि एक बार चूकी तो वह पंगु बनकर रहेगी.'

इस लेख के आखिर तक आते-आते राहुल कहते हैं कि लड़कियों को इस तरह पितृसत्ता के बंधन तोड़कर आजाद होने और घुमक्कड़ी के लिए प्रोत्साहित करने पर मैं मर्दों की नाराजगी मोल ले लूंगा, लेकिन इस बकवास की भला परवाह कौन करता है. वे लिखते हैं-

'स्त्रियों को घुमक्कड़ी के लिए प्रोत्साहित करने पर कितने ही भाई मुझसे नाराज होंगे और इस पथ की पथिका तरुणियों से तो और भी. लेकिन जो तरुणी मनस्विनी और कार्यार्थिनी है, वह इसकी परवाह नहीं करेगी, यह मुझे विश्वास है. उसे इन पीले पत्तों की बकवाद पर ध्यान नहीं देना चाहिए. जिन नारियों ने आंगन की कैद छोड़कर घर से बाहर पैर रखा है, अब उन्हें बाहर विश्व में निकलना है. स्त्रियों ने पहले-पहल जब घूंघट छोड़ा तो क्या कम हल्ला मचा था और उन पर क्या कम लांछन लगाये गये थे? लेकिन हमारी आधुनिक-पंचकन्याओं ने दिखला दिया कि साहस करने वाला सफल होता है और सफल होने वाले के सामने सभी सिर झुकाते हैं.'

इसके साथ ही वे मर्दों और मर्दवाद को दम भर कोसते भी हैं, 'मैं पुरुषों से कहूंगा– तुम टिटहरी की तरह पैर खड़ा कर आसमान को रोकने की कोशिश न करो.' वे परिवार से लेकर देश-समाज और औरतों तक के ठेकेदार पुरुषों को संबोधित करते हुए लिखते हैं, 'तुम इस प्रवाह को रोक नहीं सकते. अधिक-से-अधिक अपनी पुत्रियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से वंचित रख सकते हो, लेकिन पौत्री को कैसे रोकोगे, जो तुम्हारे संसार से कूच करने के बाद आने वाली है. हमारी आंखों के सामने भीषण परिवर्तन दिन-पर-दिन हो रहे हैं. चट्टान से सिर टकराना बुद्धिमान का काम नहीं है. लड़कों के घुमक्कड़ बनने में तुम बाधक होते रहे, लेकिन अब लड़के तुम्हारे हाथ में नहीं रहे. लड़कियां भी वैसा ही करने जा रही हैं. उन्हें घुमक्कड़ बनने दो, उन्हें दुर्गम और बीहड़ रास्तों से भिन्न-भिन्न देशों में जाने दो. लाठी लेकर रक्षा करने और पहरा देने से उनकी रक्षा नहीं हो सकती. वह तभी रक्षित होंगी, जब वह खुद अपनी रक्षा कर सकेंगी. तुम्हारी नीति और आचार-नियम सभी दोहरे रहे हैं – हाथी के दांत खाने के और, और दिखाने के और होते हैं. अब समझदार मानव इस तरह के डबल आचार-विचार का पालन नहीं कर सकता, यह तुम आंखों के सामने देख रहे हो.'

राहुल स्त्रियों से पितृसत्ता के सारे बंधनों को तोड़कर पिंजरे से आजाद हो जाने की गुहार लगाते हुए लिखते हैं, 'साहसी तरुणियों को समझना चाहिए कि एक के बाद एक हजारों कड़ियों से उन्हें बांध के रखा गया है. पुरुष ने उसके रोम-रोम पर कांटी गाड़ रखी है. स्त्री की अवस्थाओं को देखकर बचपन की एक कहानी याद आती है – न सड़ी, न गली एक लाश किसी निर्जन नगरी के प्रासाद में पड़ी थी. लाश के रोम-रोम में सुइयां गाड़ी हुई थीं. उन सुइयों को जैसे-जैसे हटाया गया, वैसे-ही-वैसे लाश में चेतना आने लगी. जिस वक्त आखिरी सुइयों को निकाल दिया गया, उस वक्त लाश बिलकुल सजीव हो उठ बैठी और बोली 'बहुत सोये.' आज भी नारी का रोम-रोम परतंत्रता की सुइयों से बिंधा हुआ है, जिन्हें पुरुषों के हाथों ने गाड़ा है. किसी को आशा नहीं रखनी चाहिए कि पुरुष उन सुइयों को निकाल देगा.'

70 साल बाद भी इस लेख को पढ़ते हुए ऐसा नहीं लगता कि इसमें लिखी कोई भी बात अब प्रासंगिक नहीं रही या गुजरे जमाने की बात हुई. संपत्ति में बराबरी के अधिकार से लेकर अपनी देह और जीवन पर अधिकार तक स्त्रियों की जिंदगी के सारे सवाल आज भी उतने ही मौजूं हैं, जितने तब रहे होंगे, जब राहुल सांकृत्यायन घुमक्कड़ शास्त्र लिख रहे थे.

सच है कि स्त्री की देह पर मर्दवाद की जितनी सुइयां तब बिंधी हुई थीं, उससे थोड़ी ही कम अब हैं. और ये सारी सुइयां स्त्रियों को खुद ही निकालनी होंगी. कोई मसीहा, कोई मुक्तिदाता, कोई पुरुष नहीं आएगा. ❑

महात्मा गांधी राष्ट्रपिता क्यों!

-मदन मोहन वर्मा/चित्रा वर्मा

वर्तमान में गांधी विरोधी कुछ कट्टर पंथियों द्वारा गांधीजी को राष्ट्रपिता कहने पर ऊल-जलूल और अनावश्यक टिप्पणी की जा रही है। यू-ट्यूब पर कुछ लोग अपने भाषणों में गांधीजी को राष्ट्रपिता मानने से इनकार करने का दम्भ भरते हैं और कहते हैं कि कोई व्यक्ति राष्ट्र का पिता कैसे हो सकता है। आज सुबह ही एक व्यक्ति ने दूरभाष से गांधीजी के लिए राष्ट्रपिता संबोधन पर अनावश्यक जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कुछ प्रश्न पूछे। मैंने उन प्रश्नों के समाधान स्वरूप उत्तर देने की कोशिश की।

गंगा को भारत की जीवनदायिनी गंगा मां के रूप में मान्यता प्राप्त है। कट्टरपंथियों की तरह प्रश्न किया जाय तो गंगा मां का स्वरूप बिगड़ जायेगा। गंगा मां के रूप में एक गाना भी गाया गया है, उसमें कहा गया है कि 'मानो तो मैं गंगा मां हूं, ना मानो तो बहता पानी'। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में गंगा को हमेशा मां के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

गाय को भारत में हमेशा से गाय न मानकर, गो-माता के रूप में ही आम मान्यता रही है। उपरोक्त प्रश्नकर्ताओं के तर्कों के आधार पर गाय को गो-माता नहीं माना जा सकता है, जबकि भारत में सनातन काल से गाय की मान्यता हमेशा गो-माता के रूप में ही रही है।

भारत भूमि को भारत भूमि न मानकर भारत माता के रूप में सांस्कारिक मान्यता सदैव से चली आ रही है। इसी प्रकार धरती माता को भी केवल धरती न कहकर धरती माता कहने की मान्यता चली आ रही है। प्रश्नकर्ताओं के दृष्टिकोण से देखा जाय तो भारत माता व धरती माता की परिकल्पना ही समाप्त हो जायेगी।

भारत में राष्ट्रपति का पद है। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि भौतिक रूप में वह राष्ट्र का पति है। देश की प्रथम महिला राष्ट्रपति जब प्रतिभा पाटिल थीं, तो भी राष्ट्रपति को राष्ट्रपति ही कहा गया।

राजा-महाराजाओं के समय में जब राजमाता की परिकल्पना की गयी थी, तो उसका आशय भौतिक रूप से सभी लोगों की माता के रूप में स्वीकार करना नहीं था। प्रश्नकर्ताओं का आशय राजमाता के संदर्भ में तो विकृत ही हो जायेगा।

जब हम चंद्रमा को चंदा मामा के रूप में रूपायित करते हैं, तो चांद हमारे वास्तविक मामा का स्थान नहीं लेता है, परंतु चंद्रमा को भारत में श्रद्धा स्वरूप चंद्रमा न कहकर चंदा मामा के नाम से ही संबोधित किया जाता है।

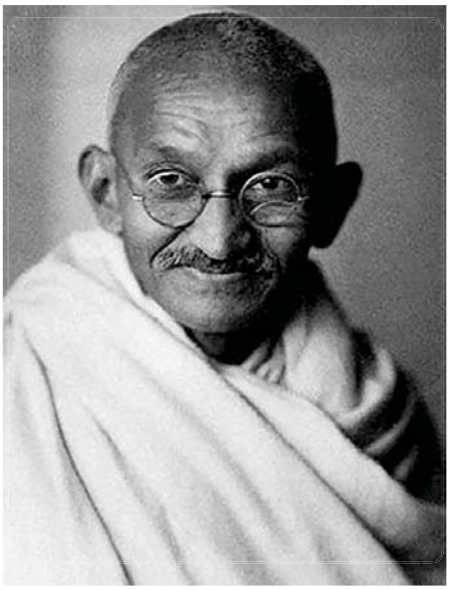

हमारे संविधान में राष्ट्रपति के अतिरिक्त कई अन्य शब्द जैसे कुलपति, सभापति, उपसभापति आदि का शाब्दिक अर्थ कभी नहीं किया गया, बल्कि उसका पदेन व भावात्मक अर्थ ही किया जाता है।

जब किसी व्यक्ति को भारतरत्न कहा जाता है, तो उसका आशय कदापि सोने-चांदी, हीरे-जवाहरात से नहीं होता है। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर को गुरू कहा जाता है। स्पष्ट है कि प्रश्नकर्ताओं के अनुसार भौतिक गुरू रविन्द्रनाथ टैगोर नहीं थे, फिर भी उन्हें गुरू की उपाधि से ही संबोधित किया जाता है।

कबीरदास कहते हैं, 'पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहाड़'। ज्ञानमार्गी संतों ने तो साकार ईश्वर को ही मानने से इनकार कर दिया। फिर भी पत्थर की मूरत में साकार ईश्वर की महिमा सतत रूप से कायम है।

भारत में तो नाग को भी देवता माना गया है। ऐसे अनगिनत उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिसका भौतिक/शाब्दिक अर्थ किये जाने से शब्दों का मूल भाव ही लुप्त हो जायेगा।

उपाधियां स्वीकार या अस्वीकार करने की स्वतंत्रता लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को है। मां को लोग संस्कार स्वरूप मां ही मानते हैं। कोई अपनी मां को पिताजी की पत्नी या पिताजी की प्रेमिका के रूप में नहीं देखता। प्रश्नकर्ताओं को भी गांधीजी में राष्ट्रपिता का प्रतिबिम्ब ही देखने की आवश्यकता है। भारत के लोगों ने गांधीजी को सम्मान स्वरूप, अपने महानायक को श्रद्धापूर्वक राष्ट्रपिता की उपाधि से संबोधित किया। यह भी उल्लेखनीय है कि गांधीजी को राष्ट्रपिता की उपाधि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने दी थी। नेताजी ने जब आजाद हिन्द फौज की संरचना की, तो उन्होंने अपनी पहली ब्रिगेड का नाम गांधी ब्रिगेड रखा था। प्रत्येक देश ने सम्मान स्वरूप अपने किसी न किसी नायक को राष्ट्रपिता की उपाधि से संबोधित किया है और हर देश अपने राष्ट्रपिता का सम्मान करता है। सिर्फ भारत ही ऐसा देश है, जहां लोग राष्ट्रपिता को भी ऊल-जलूल शब्द बोल सकते हैं। अन्य किसी देश में कोई भी व्यक्ति अपने राष्ट्रपिता के विरुद्ध बोलने की हिम्मत भी नहीं करता।

प्रश्नकर्ताओं से मेरा निवेदन है कि गांधीजी की और गांधीजी पर लिखी अच्छी पुस्तकें, जैसे 'सत्य का प्रयोग', 'आधी रात को आजादी', 'गांधी : भारत से पहले', 'गांधी की कहानी' - लुईफिशर, 'पूर्णाहुति', 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह का इतिहास' आदि पढ़ लें, तो उनकी समस्याओं का स्वतः समाधान हो जायेगा और तब वे स्वयं निर्णय करें कि गांधी को राष्ट्रपिता मानें या न मानें। ❑

मदन मोहन वर्मा : न्याय के प्रति समर्पित एक गांधीवादी व्यक्तित्व

❑ डॉ. आर. एस. दूबे

वैचारिकता जब सिद्धांतों पर आरूढ़ हो, नैतिक कर्तव्य को परिभाषित करने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि सकारात्मक परिवर्तन दस्तक दे रहा है। देश, समाज और परिवार की पृष्ठभूमि पर ऐसे व्यक्तित्व का उभरना ईश्वर-कृपा का संकेत होता है। आज देश वर्तमान, छद्म विकास के दौर में ढकेल दिया गया है और भारत को अपने उत्तर-पथ से विमुख कर दिया गया है। इसके लिए सबसे अधिक दोषी वर्तमान व्यवस्थाकार हैं। परंतु ऐसी गंभीर परिस्थितियों में भी विचार क्रांति के धनी मदन मोहन वर्मा जैसे लोग प्रकट होते रहे हैं। उनकी सहजता, उनका व्यक्तित्व, उनकी भाषा शैली और स्पष्ट वैचारिक प्रस्तुति अपने आप में अनूठी है। इसके पीछे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और उनके व्यक्तित्व पर महात्मा गांधी के विचारों का गहरा प्रभाव है।

प्रशासकीय जिम्मेदारियों का कुशलता-पूर्वक निर्वहन करते हुए वे अनेक सामाजिक कार्यों के प्रति अपने कर्तव्य को बड़ी संजीदगी से पूरा करते हैं। अपने पद से जुड़ी शासकीय न्याय प्रक्रिया में गांधीजी की भूमिका को भलीभांति परिभाषित कर, वे अपनी बौद्धिक कुशलता तथा विवेकसम्पन्नता का परिचय देते हैं और सामने वाला भी गांधीजी के महत्त्व को भलीभांति समझ कर संतुष्ट हो जाता है। महात्मा गांधी एक ऐसा नाम है, जो न्याय की प्रक्रिया को सहज और सरल बना देता है।

महात्मा गांधी के विचारों, उनके सिद्धांतों और उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रति वर्मा जी का समर्पण अनूठा है। उनका मानना है कि महात्मा गांधी के अंदर गीता में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुप्रयोग को सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है। सिर्फ गांधी के प्रति ही नहीं, भारत अथवा विश्व स्तर पर जन्मे अनेक महापुरुषों के प्रति भी वर्मा जी का श्रद्धा भाव समादरणीय है। आमजन से की गयी उनकी अपील बड़ी स्पष्ट है। उनका कहना है कि आप मनुष्य हैं, आपके जीवन में कोई न कोई एक महापुरुष अवश्य होगा। हर महापुरुष के अंदर अच्छाइयां होती हैं, माना कुछ बुराइयां भी होती होंगी। आपसे मेरा अनुग्रह है कि आप अपने पसंदीदा महापुरुष के सकारात्मक विचारों को ग्रहण कर सामाजिक समरसता में अपना भरपूर योगदान दीजिए। फलतः समाज में उत्पन्न होने वाली छोटी-छोटी बुराइयां अपने आप समाप्त होती जायेंगी और आपको अनावश्यक रूप से न्यायालय या अन्य प्रशासनिक महकमों में दौड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। सत्य यही है कि मनुष्य किसी धर्म, जाति अथवा संप्रदाय का हो, अगर वह उसमें उत्पन्न आदर्श पुरुष के व्यक्तित्व का अनुसरण करें और उस महापुरुष

द्वारा बनाये गये नियमों और आदर्शों का अपने जीवन में अनुपालन मात्र करे, तो भी उसका जीवन धन्य हो जायेगा तथा अपना जीवन सुगमतापूर्वक व्यतीत करते हुए वह दूसरे के जीवन को मधुमय बना सकता है।

वर्मा जी की विचारधारा लोकोपकारी है। इसके पीछे महात्मा गांधी की प्रेरणा का प्रतिफल है। देश विदेश से महात्मा गांधी पर प्रकाशित लगभग सभी पुस्तकों का गहन अध्ययन कर चुके वर्मा जी की सोच और कार्यशैली वैसी हो गयी है, जैसी एक परिपक्व समाज सुधारक की होनी चाहिए। मन, वाणी और कर्म का समावेश वर्मा जी के जीवन में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनकी सत्यता आपको तब परिलक्षित होगी, जब आप उनके कार्य क्षेत्र में प्रवेश करेंगे, क्योंकि वर्मा जी का अध्ययन सिर्फ गांधी वाङ्मय तक ही सीमित नहीं है। जहां-जहां उन्होंने कार्य किया, उन सभी स्थलों पर महात्मा गांधी की प्रतिमा स्थापित कर जनमानस में एक नूतन संदेश देने का प्रयास भी किया है। अपने कार्यक्षेत्र में उन्होंने महात्मा गांधी की आत्मकथा के वितरण द्वारा अधिवक्ताओं, कर्मचारियों एवं आमजन के हृदय में न्याय के प्रति ईमानदार होने की अलख जगायी है। वर्मा जी का एक अनूठा प्रयोग है। वे वादकारियों को सत्य के साथ रहने को प्रेरित करते रहते हैं। गांधीजी की वैचारिक धुरी पर सत्य और असत्य को संतुलित करने से समस्याएं आपस में सामंजस्य बैठा लेती हैं और व्यक्ति पूर्ण संतुष्ट होकर अपने घर को लौट जाता है।

शुद्ध और पवित्र वातावरण के प्रति उनकी सच्ची निष्ठा दूसरों के विचारों को भी अनुरंजित करती है। कागज पर बने नियमों की अपेक्षा वर्मा जी मानवता के नियमों को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। वे कहते हैं कि महात्मा गांधी लोगों में नेतृत्व की दक्षता को विकसित और पोषित करते थे, जिसका आज के नेताओं में बड़े पैमाने पर अभाव दिखता है। यह देश के लिए अशुभ संकेत है, क्योंकि कुशल नेतृत्व के बिना राष्ट्र का उन्नयन संभव ही नहीं है।

वर्ममान परिवेश में भारत विसंगतियों से जूझ रहा है। आज समाज को ऐसे ही अनूठे व्यक्तित्वों की आवश्यकता है, जिसके अंदर सम्यक सोच हो, वही देश और समाज का मार्गदर्शक बन सकता है, क्योंकि आचरण की सभ्यता वाक् सभ्यता से सौगुना अधिक बलवती होती है। वर्मा जी की आचरण-सभ्यता अत्यंत प्रभावशाली है। आइए, हम सब मंगल कामना करते हैं कि उनके स्वस्थ चिन्तन को नित्य नूतन आयाम मिलता रहे और लोक कल्याण की उनकी भावनाएं हमेशा बलवती रहें, जिससे आने वाली पीढ़ियों को नया मार्गदर्शन मिले और वह अपने कर्तव्य पर पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से अग्रसर होते हुए अपने जीवन और राष्ट्र को समृद्धशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सके। ❑

क्या मनुष्य ईश्वर बन जायेगा!

❑ अरविन्द अंजुम

मनुष्य की अद्‌भुत कल्पना है—स्वर्ग। वास्तव में यह महज कल्पना नहीं, बल्कि ख्वाहिशें हैं, जिनकी स्वर्ग के ठिकाने के रूप में कल्पना की गयी है। 21वीं शताब्दी से पहले तक यह कोई सोच भी नहीं सकता था कि मनुष्य स्वर्ग में कल्पित उपलब्ध सारी सुविधाओं को एक दिन हासिल करने की दिशा में अग्रसर हो जायेगा।

स्वर्ग के बारे में सबसे बुनियादी कल्पना व ख्वाहिश है कि मनुष्य मरण से मुक्त होकर अमरत्व प्राप्त कर ले। इसीलिए स्वर्ग में जाने के बाद कोई मरता नहीं है। मनुष्य मरना नहीं चाहता है। पृथ्वी का सबसे बड़ा भय है - मृत्यु। मनुष्य मृत्यु से मुक्त होना चाहता है। इसी बिना पर कई प्रकार के विचार व दर्शन भी विकसित हुए। तसल्ली के लिए 'आत्मा के अमरत्व' का सिद्धांत आया, पुनर्जन्म की, निर्वाण की कथाएं प्रकट हुईं, क्योंकि मनुष्य इस महान भय के नीचे जी नहीं सकता था और जीने के लिए किसी ठोस तसल्ली व सहारे की जरूरत थी। 'स्वर्ग' इसी मांग की पूर्ति करता है।

बहरहाल, निष्कर्ष यह है कि मनुष्य का अमरत्व हासिल करना ही चरम अभीष्ट है और अगर मनुष्य अमर हो तो फिर वह देवत्व की पदवी प्राप्त कर लेता है।

धर्म व दर्शन ने अपने तरीके से मनुष्य को देवत्व प्रदान करने का आध्यात्मिक प्रयास कर लिया है और अपने स्तर पर संतुष्ट करने की कवायद की सीमा भी तय कर दी है। पर मनुष्य उन प्रयासों से संतुष्ट नहीं हुआ है। अतः अब यह बीड़ा चिकित्सा शास्त्र व विज्ञान ने उठा लिया है कि मनुष्य कभी मरे ही नहीं। इस आश्चर्यजनक चाहत व कल्पना की दिशा में विज्ञान अग्रसर भी है। इन्हीं वैज्ञानिक उद्यमों का परिणाम है कि 19वीं सदी में मनुष्य की औसत आयु 40 वर्ष थी, जो 20वीं सदी में बढ़कर 70 वर्ष की हो गयी और विज्ञान की ऐसी ही कोशिशें जारी रही तो 21वीं सदी के अंत तक यह आयु 150 वर्ष की हो जायेगी। फिर अगली शताब्दी में अमरत्व प्राप्त कर लिया जा सकता है।

क्या यह आयुवर्द्धन और अमरत्व की बातें भी स्वर्ग की तरह कल्पना ही हैं या इसका कोई आधार भी है। इन बातों पर विचार करने के पहले एक खबर को जान लिया जाना बेहतर है।

न्यूयॉर्क टाइम्स के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखक व उद्यमी हैं—डेव एस्प्रे। उनका लक्ष्य व दावा है कि वे 180 साल तक जिन्दा रहेंगे। फिलहाल वे 47 वर्ष के हैं और इस लक्ष्य के अनुसार वे 2153 तक जीवित रहेंगे। यह दावा किसी तपस्या या किंवदंतियों का मोहताज नहीं है। इसके लिए चिकित्सा शास्त्र के आधुनिक आविष्कारों का प्रयोग किया गया है। डेव के शरीर के बोनमैरो से स्टेम सेल निकालकर उसे फिर से उनके शरीर में प्रत्यारोपित किया गया। इससे शरीर की बायोलॉजिकल घड़ी (क्लॉक) उल्टा घूमने लगेगी। इस तकनीक को बायोहैकिंग कहा जाता है। डेव का दावा है कि भविष्य में यह तकनीक आम हो जायेगी और भविष्य में मोबाइल फोन की तरह प्रचलन में आ जायेगी। अपने दीर्घ जीवन के लिए वे कोल्ड क्रायोथेरेपी चैंबर और खास आहार पद्धति का तरीका भी अपना रहे हैं। डेव का मानना है कि यदि 40 वर्ष से कम उम्र वाले इस तरीके को अपना लें तो 100 साल तक वे खुश और खासे क्रियाशील बने रह सकते हैं। डेव ने अपने भोजन व नींद को नियंत्रित एवं संयोजित कर लिया है। वे कहते हैं कि इन सब तरीकों को अपनाकर और बुढ़ापा रोकने वाले अन्य उपचार करके उन्होंने खुद को इस तरह बना लिया है कि शरीर में कम से कम ज्वलन (इन्फ्लेमेशन) हो। उन्होंने बताया कि जब हम युवा होते हैं, तो शरीर में करोड़ों सेल होते हैं। उम्र बढ़ने लगती है तो ये नष्ट होने लगते हैं। इसलिए वे इंटरीमटेंट अर्थात् अंतराल में भोजन अपनाते हैं। इससे शरीर जब भोजन नहीं पचा रहा होता है तो खुद की मरम्मत करता है। कोल्ड कायोथेरेपी शरीर के क्षतिग्रत उतकों का कम तापमान में उपचार करने की पद्धति है। (7 फरवरी, दैनिक भास्कर)। डेव एस्प्रे ने अपने दीर्घायु जीवन के लिए अपनायी गयी विभिन्न पद्धतियों पर 7.4 करोड़ रुपये खर्च किये हैं। स्वाभाविक है कि दीर्घायु या अमरत्व शायद आम नहीं होकर खास हो। वैसे भी धर्म-दर्शन व अध्यात्म भी सबके स्वर्ग व निर्माण का रास्ता कहां खोजता है? इस तरह विज्ञान व अध्यात्म कम से कम इस मामले में समान भूमिका में आ गया है।

चिकित्साशास्त्र व विज्ञान मनुष्य की आदिम इच्छा को पूरा करने को उद्यत है, भले ही हवा, पानी, सूर्य की रोशनी, खेती, अनाज की तरह आयु अर्जन व अमरत्व भी एक व्यापारिक सुविधा बन जाये। जिनके पास धन होगा, वे शताब्दी के बाद किसी भालू पार्क में टहलते हुए नजर आयेंगे तो कोई एक-दूसरे से कहेगा - ''देखो, इस व्यक्ति की उम्र 232 वर्ष है।'' आप सोचें कि जब कोई 200 या 300 वर्ष तक जियेगा तो फिर उसका सामाजिक व मनोवैज्ञानिक परिणाम क्या होगा?

और ऐसा भी है कि मनुष्य मरेगा ही नहीं। किसी के मारने पर या दुर्घटना में तो मर सकता है, लेकिन स्वाभाविक मृत्यु के दायरे से परे जाकर वह सुपर ह्यूमन - अति मानव की श्रेणी में आ जायेगा और दूसरी ओर गरीब वर्ग कीड़े-मकोड़े में तब्दील हो जायेंगे। तब क्या होगा? अपनी कल्पनाओं को उस दिशा में छोड़ दें।

किन्तु यह तथ्य है कि मनुष्य ईश्वर बनने की दिशा में अग्रसर है। बनेगा या नहीं, अधर में है जवाब। ❑

किसान आंदोलन में है अर्थव्यवस्था को बदल डालने की ताक़त

❑ एस पी शुक्ला

कॉर्पोरेट पूँजी के सामने अब तक का सबसे बड़ा संकट आ खड़ा हुआ है। नवउदारवाद के दौर में पिछले तीस वर्षों में मुनाफ़ा कमाने की प्रक्रिया में अनेक बार अवरोध आये, लेकिन इतनी बड़ी अड़चन कभी नहीं आयी थी। इस संकट से बाहर निकलने की छहटपटाहट में कॉर्पोरेट पूँजी ने अपना आखिरी हमला बोल दिया है।

उद्योगों, व्यापार और वित्त के क्षेत्रों को निगलने के बाद कॉर्पोरेट पूँजी की लालची आँखें अब ज़मीन और खेती-किसानी की तरफ घूम गयी हैं। खेती-किसानी के साथ-साथ कॉर्पोरेट पूँजी का इरादा सार्वजनिक क्षेत्र में मौजूद सड़क, रेल, हवाई अड्डे, विमानन कंपनियों, जहाज, बंदरगाह आदि सार्वजनिक इंफ्रास्ट्रक्चर, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के सार्वजनिक सेवा क्षेत्र को निगल जाने का भी है।

याद रखिये कि पूँजीवाद का यह हमला हमारी खेती और ज़मीन पर नया नहीं है। भारत के खेती-किसानी करने वाले लोगों पर 18वीं सदी में उपनिवेशवाद के दौर में अँगरेज़ों ने हमला शुरू किया था। उन्होंने न केवल अपनी ज़रूरत की फसलों की ज़बरदस्ती खेती करवाई और हमारा फसल चक्र बदल डाला, बल्कि खेती पर तमाम तरह के टैक्स लगाकर दुनिया के भीषण अकालों को अंजाम दिया, जिसमें लाखों लोगों की जानें गईं। इतिहास एक बार फिर अपने आपको दोहरा रहा है।

औपनिवेशिक गुलामी के दौर के ख़त्म होने के बाद भारत में स्थापित हुए कल्याणकारी राज्य ने खेती-किसानी में शामिल लोगों के लिए नये मौके मुहैया करवाए। नयी तकनीक और राज्य का सकारात्मक हस्तक्षेप खेती को मिला और नतीजे के तौर पर देश खाद्य पदार्थों के उत्पादन के मामले में काफी हद तक आत्मनिर्भर बना। इससे खेती से जुड़े लोगों की ज़िंदगी में ज़मीनी स्तर पर बड़े बदलाव आये। बेशक जो बदलाव आये, वे खेती से जुड़े हर तबके के लिए एक जैसे नहीं थे, न ही ऐसा था कि वे बदलाव देश के सभी इलाकों के सभी किसानों तक पहुँचे। लेकिन इन बदलावों में किसानों के पूरे तबके को बेहतरी की ओर ले जाने का वादा था। अब ये वादा और बेहतरी की संभावना ही पूरी तरह ख़त्म की जा रही है।

भारत के खेतिहर समाज पर हाल-फिलहाल जो खतरा मंडरा रहा है, वह उन कृषि कानूनों की शक्ल में है, जिनके अमल में आने पर पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान की कृषि अर्थव्यवस्था का वह हिस्सा तबाह हो जायेगा, जो खेत मज़दूरों और छोटे किसानों की तुलना में बेहतर आर्थिक स्थिति में है। इन कानूनों के अमल में आने से कॉर्पोरेट पूँजी को भारत की कृषि से जुड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बेरोकटोक कारोबार का रास्ता भी खुल जाएगा। सरकार द्वारा कॉर्पोरेट पूँजी के गठजोड़ में खेती-किसानी पर किये गए हमले की रणनीति न्यूनतम समर्थन मूल्य (मिनिमम सपोर्ट प्राइस) पर सरकार के रुख से और साफ़ नज़र आती है। ये अहम् बात है कि सत्ता में बैठे लोग न्यूनतम समर्थन मूल्य को कभी भी सभी राज्यों की सभी फसलों के लिए कानूनी तौर पर लागू नहीं करना चाहते हैं। वे कभी ऐसा करना भी नहीं चाहते थे, क्योंकि एमएसपी कृषि के प्रगतिशील बदलाव की मुख्य धुरी है।

इसलिए ज़ाहिर है कि किसानों का जो आंदोलन शुरू हुआ, वह उन इलाकों के किसानों ने शुरू किया, जिन पर इन कानूनों की सबसे पहले और सबसे साफ़ तौर पर मार पड़ रही थी। यह किसान आंदोलन, किसानों द्वारा ही संगठित किया गया और उसी में से इसके नेतृत्व को गढ़ा गया। इस आंदोलन को पूरे देश के किसान समाज से सहयोग और समर्थन मिला, भले ये किसान वर्गीय आधार पर उनसे छोटे हों या वे देश के मुख़लिफ इलाकों के हों। यह आंदोलन ग्रामीण खेतिहर समाज के भीतर मौजूद जातिभेद और सांप्रदायिक भेद की चुनौतियों से भी निपटकर आगे बढ़ा। हुक्मरानों ने राष्ट्रवाद के नाम पर भी इसे बदनाम करने की साज़िशें कीं, आंदोलनकारी किसानों को खालिस्तानी और विदेशों से आने वाले पैसों पर चलने वाला कहा गया, लेकिन उस साज़िश को हराकर भी ये आगे बढ़ा। सबसे बड़ी बात यह कि जाति, धर्म और भौगोलिक या प्रांतीय फर्क को पार करके इसने एक नयी राजनीतिक पहचान भी विकसित की, जो 'किसान' होने की पहचान है।

इस किसान आंदोलन ने राजनीतिक दलों से एक सुरक्षित दूरी रखने का विवेक और दूरदर्शिता दिखाई है, क्योंकि राजनीतिक दलों के फौरी चुनावी राजनीतिक स्वार्थ और संकीर्णताएँ आन्दोलन से व्यापक जनता को जोड़ने में अड़चन बन सकती थीं। लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि आंदोलन के भीतर राजनीतिक समझ का अभाव है। रणनीतिक तौर पर इस आंदोलन ने अपने आपको अधिक राजनीतिक बनाया है और व्यापक राजनीतिक समझ विकसित की है। इसने मेहनतकश तबके से, नौजवानों से, बेरोज़गारों से, छोटे-मोटे व्यापारियों से और आढ़तियों से सहयोग और समर्थन की अपील की है, जो खुद भी कॉर्पोरेट पूँजी के हमले का शिकार बनने वाले हैं और बन भी रहे हैं। यह भी सच है कि आंदोलन में अभी भी कुछ कमज़ोर जगहें हैं। इन दरारों को बढ़ने से रोकने और उन्हें पाटने के तरीकों के बारे में आंदोलन को खुद सोचना होगा।

फिलहाल कॉर्पोरेट पूँजी के हमले का डर और खेती से जुड़े समूचे ग्रामीण समाज की आर्थिक हालत के पहले से बदतर हो जाने की असुरक्षा सभी छोटे-बड़े किसानों और खेत मज़दूरों को साथ में ले आयी है। आंदोलन को लगातार बुलंद बनाये रखने में एक तरफ बड़े किसानों के संसाधनों की भूमिका है, लेकिन उतनी ही अहम भूमिका उस तादाद की भी है, जो छोटे किसानों और खेत मज़दूरों की भागीदारी के बिना मुमकिन नहीं हो सकती थी। आंदोलन में रफ्तार और एकजुटता बनाये रखने में पंजाब, दिल्ली और हरियाणा के गुरुद्वारों व लंगरों, तथा उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान की खाप पंचायतों और किसान महापंचायतों का भी अहम् किरदार रहा है। इस एकजुटता को लम्बे समय तक कायम रखने के लिए कुछ और भी कदम उठाने ज़रूरी होंगे।

उनमें सबसे अहम् कदम होगा, ग्रामीण-कृषि अर्थव्यवस्था को सहकारिता (कोऑपरेटिव) के आधार पर फिर से खड़ा करना। इससे सीमान्त और छोटे खेतों वाले किसान आर्थिक रूप से सक्षम इकाइयाँ बन सकेंगे।

जब किसानी इस तरह से कोऑपरेटिव आधार पर पुनर्गठित की जाएगी तो उसमें मज़दूरों की और भी कम ज़ररूरत होगी। मतलब कम लोग मिलकर ही उतना काम कर लेंगे, जितना खेत के हिसाब से ज़रूरत होगी। ज़ाहिर है, इससे जो अतिरिक्त मेहनतकश लोग बचेंगे और जो खेत मज़दूर होंगे, उन्हें मज़दूरों के समूहों में संगठित करना होगा। श्रमिकों के इन समूहों को खेती की अर्थव्यवस्था के साथ आगे-पीछे जुड़ी ज़रूरतों में तो लगाया ही जा सकता है (जैसे बीज, खाद, कीटनाशक आदि का इंतज़ाम और फसल तैयार होने के बाद उसका भण्डारण, वितरण, विक्रय, प्रसंस्करण आदि), साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा व सामाजिक सेवाओं का पूरा ढाँचा तैयार करने में भी इनका समुचित उपयोग किया जा सकेगा।

मौजूदा किसान आंदोलन में एक और कमज़ोरी पर्यावरण को लेकर इसकी अपर्याप्त संलग्नता है, जिसकी तरफ भी आंदोलन को ध्यान देना होगा। हरित क्रांति अपने साथ पानी, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का बेतहाशा इस्तेमाल लेकर आयी थी। इससे ज़मीन और पानी पर ख़राब असर हुए हैं और इससे ऐसे हालात बने हैं, जिनकी वजह से किसी ख़ास इलाके में सिर्फ एक ही फ़सल पैदा हो सकती है। खेती का यह तरीका पारिस्थितिकी-तंत्र के लिहाज से भी मुनासिब नहीं है।

किसानों ने ये काम कोई जानबूझकर नहीं किया है। वे पहले से हरित क्रांति के साथ जुड़े खाद, पानी, रसायनों के बेजा इस्तेमाल के बारे में नहीं जानते थे कि लम्बे वक्त में इसके क्या नतीजे होंगे। जैसा उन्हें तत्कालीन सरकार और वैज्ञानिकों ने उस वक्त बताया, उन्होंने वैसी ही खेती करना शुरू कर दी और नतीजे में जो बम्पर फसल हुई, उसने उन्हें पर्यावरण या कुदरत के साथ हो रहे बर्ताव के बारे में ज्यादा सोचने का मौका ही नहीं दिया। वह तो अब जब ज़मीन के नीचे के पानी का स्तर हज़ारों फ़ीट नीचे चला गया है, मिटटी की गुणवत्ता और उत्पादकता बेहद कम हो गयी है और कीटनाशकों के प्रयोग से अनेक गाँवों में कैंसर जैसी असाध्य बीमारियों ने अपने पैर पसार लिए हैं, तब यह पर्यावरण और जलवायु की बात महत्त्वपूर्ण हो उठी है।

किसान तबका अब यह बात समझ रहा है। लेकिन जो हालात बन गए हैं, उनमें ये ज़रूरी है कि सामूहिक दूरदर्शिता से खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का इस तरह पुनर्गठन किया जाए, जो पर्यावरण हितैषी हो। इसे पूरा करने में सरकार की भूमिका बहुत अहम होगी। खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ज़मीन और पानी के इस्तेमाल की वैज्ञानिक आधार वाली जनहितैषी नीति बनाने के लिए सरकार को ही पहलकदमी करनी होगी। सरकार को खेती की ज़मीन को कॉर्पोरेट के कब्ज़े से बचाने के लिए ज़मीन की ख़रीद-बिक्री को भी पूरी तरह बंद करना होगा। जैसा क्यूबा की सरकार ने कर दिखाया है कि यदि जैविक खेती और फसलों में विविधता को बढ़ावा दिया जाए और नयी तकनीकों की खोज के लिए शोध और विकास में ज्यादा निवेश किया जाए तो रासायनिक उर्वरकों पर खेती की निर्भरता को घटाया जा सकता है, पानी का इस्तेमाल कम किया जा सकता है और फिर भी खेती की उत्पादकता बनाये और बढ़ाये रखी जा सकती है।

किसान आंदोलन के सामने तीसरी कमज़ोरी है कृषि उत्पादन तथा व्यापार पर विश्व व्यापार संगठन की तरफ़ से लागू अंतरराष्ट्रीय बंधन। सरकार इन्हीं शर्तों को अपने तथाकथित 'सुधार एजेंडे' को आगे बढ़ाने के लिए आखिरी तर्क के तौर पर इस्तेमाल करेगी।

विश्व व्यापार संगठन ने भारत की खेती को वैश्विक या जागतिक बाजार के साथ जोड़ दिया है, जिसमें खेती की बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों का दबदबा है। यह प्रक्रिया पूरी तरह अतार्किक, नाइंसाफी भरी और साम्राज्यवादी है। विकसित देशों की खेती हमारे देश की खेती से पूरी तरह अलग है। उसका ढाँचा अलग है, उसकी गुणवत्ता अलग है। उन देशों की अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में खेती का योगदान बहुत ही कम है। इसी तरह वहाँ खेती पर निर्भर श्रमिक भी अधिक नहीं है। जबकि हमारे देश के हालात इसके बिलकुल उलट हैं। हमारे देश में सकल घरेलू उत्पाद में खेती की हिस्सेदारी 15 फ़ीसदी है जबकि खेती पर निर्भर लोगों की तादाद 50 फीसदी है।

हमारे देश में बड़ी आबादी ग़रीबी में रहती है। उनकी आमदनी इतनी भी नहीं होती कि वे अपनी ज़रूरत के मुताबिक खाना भी खा सकें। इसलिए सरकार लोगों की अनाज की ज़रूरतों को सिर्फ़ आयात के भरोसे छोड़ कर देश की बड़ी आबादी को खाद्य असुरक्षा की ओर नहीं धकेल सकती है। अपनी खस्ताहाल विशाल आबादी को उचित दाम पर रसद की आपूर्ति करने के लिए उसे अपने देश में भी अच्छा-खासा कृषि उत्पादन करना होगा और सार्वजानिक क्षेत्र के माध्यम से बड़े पैमाने पर अनाज का भण्डारण और वितरण भी करना होगा।

कृषि उत्पादों के भूमंडलीय बाज़ार, कीमतों की घोर अनिश्चितता के लिए कुख्यात हैं। हमारे कृषि उत्पादन और विपणन को उस बाज़ार की कीमतों की उथल-पुथल से सीधे बाँध देने के दुष्परिणामस्वरूप कृषि पर निर्भर श्रमिकों के बहुत बड़े तबके पर अनियोजित ढंग से विस्थापित किये जाने का ख़तरा सदा बना रहेगा। सामाजिक और आर्थिक स्थिरता के लिए यह ज़रूरी है कि हम अपनी कृषि व्यवस्था को ऐसी उथल-पुथल और अव्यवस्था से बचाकर रखने की हरसंभव कोशिश करें।

अमेरिका और यूरोप के कृषि व्यापार वाली लॉबी बहुत ताक़तवर और विश्वस्तरीय है। इसी लॉबी ने डब्ल्यूटीओ में शामिल कृषि समझौते (अग्रीमेन्ट ऑन एग्रीकल्चर) के तहत दो महत्त्वपूर्ण कामयाबियां हासिल कीं। एक तो उन्होंने अपने देशों की सरकारों को खेती के क्षेत्र को समर्थन देना सुनिश्चित कर लिया ताकि उनके देशों के कृषि उत्पाद सस्ते हों। साथ ही साथ उन्होंने विकासशील देशों के बाज़ारों को अपने देशों के सब्सिडी प्राप्त कृषि उत्पादों के निर्यात के लिए खोलने में भी कामयाबी हासिल कर ली। इसके ठीक उलट विकासशील देश अब तक आयातों के हमले के खिलाफ डब्ल्यूटीओ के आकाओं से कुछ न्यूनतम सुरक्षात्मक प्रावधान बनाने के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं। वे इस बात के लिए अभी लड़ रहे हैं कि अपने देश के ज़रूरतमंद लोगों के लिए सरकारी खर्चे से आवश्यक मात्रा में खाद्यान्न भंडारण करने का उनका अधिकार डब्ल्यूटीओ के कृषि समझौते (एओए) में कानूनन शामिल हो।

ये छोटी-छोटी माँगों को लेकर पिछले दो दशकों से वार्ताएँ दर वार्ताएँ चलती आ रही हैं,

लेकिन नतीजा अभी तक सिफर ही रहा है। अब ऐसे एकीकृत प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे हमारे जैसे मुल्कों में खेती का जो विशिष्ट, अद्वितीय और मौलिक स्थान है, उसको सर्वमान्यता हासिल हो। परिणामस्वरूप, डब्ल्यूटीओ के अंतर्गत कृषि समझौते में ऐसे देशों को अपने कृषि उत्पादन तथा व्यापार के विषय में विस्तृत नीति-स्वातंत्र्य हासिल हो।

पहले के गैट के निज़ाम में जिन तर्कों के आधार पर अमेरिका को अपने कृषि उत्पाद व व्यापार के विषय में स्थायी रूप से नीतिगत तथा यूरोपियन इकॉनॉमिक कम्यूनिटी को अपनी साझी कृषि नीति जारी रखने की छूट दी गई थी और बाद में भी जिन तर्कों की बुनियाद पर मौजूदा डब्ल्यूटीओ के निज़ाम में अमेरिका और यूरोपियन यूनियन को मुक्त मन से सब्सिडी के 'हरे और नीले बक्सों' के तहत बड़ी-बड़ी छूटें दी गईं, उन तर्कों की वैधता हमारी ज़रूरतों के सामने न तब कुछ थी और न अब कुछ है। हमारे देश में ज़रूरत खाद्य सुरक्षा की है, फिर उसके बाद, खेती पर निर्भर भारी-भरकम आबादी के अनियोजित और अप्रत्याशित विस्थापन के भूचाल को रोकने की है। खेती के उत्पादन और व्यापार के सन्दर्भ में अधिक स्वायत्तता की माँग करने का तर्क हमारे पास उनकी तुलना में कहीं ज्यादा मज़बूत है।

यह सही वक्त है, जब हम अपनी माँग डब्ल्यूटीओ में ज़ोरदार तरीके से उठाएँ। नवंबर, 2021 में डब्ल्यूटीओ की मंत्रिस्तरीय बैठक होना निर्धारित है। खबर है कि डब्ल्यूटीओ में भारत और चीन की दो साधारण सी जायज़ (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है) माँगों के समर्थन में काफ़ी माहौल बन चुका है। भारत को इस मौके पर खेती सम्बन्धी एजेंडे का दायरा बढ़ाने की पहल करना बहुत ज़रूरी है। कृषि उत्पाद और व्यापार के मामले में विकासशील देशों के साथ विस्तृत व नीतिगत स्वातंत्र्य हासिल करने के लिए एक समेकित और ज़ोरदार मुहिम का नेतृत्व भारत को करना चाहिए।

ऐसा कदम उठाने के लिए यह वक्त बिल्कुल मुफ़ीद है। पूरी दुनिया में मंदी के हालात बने हुए हैं। हाल में आपूर्ति की कड़ियों का टूटना सारी दुनिया ने महसूस किया है। कोविड-19 की वजह से दुनिया भर में भूख और कुपोषण अपने विकरालतम स्वरूप में पूरी तरह ज़ाहिर हो चुके हैं और सारी दुनिया में खाद्यान्न के बारे में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की दिशा में ठोस पहल की जा रही है। ये हालात हमारे लिए भोजन के मामले में राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भरता के एजेंडे को आगे बढ़ाने में मददगार होंगे।

आखिर में, यह बात ध्यान देने लायक है कि डब्ल्यूटीओ अपने 25 वर्षों के संस्थागत इतिहास में फिलहाल सबसे कमज़ोर हालत में है। इसकी वजह भी तेज़ चाल वाली वे क्षेत्रीय और वैश्विक पहलक़दमियाँ हैं, जिन्होंने डब्ल्यूटीओ को किनारे पर खिसका दिया है, जैसे मुक्त व्यापार समझौते और आर्थिक एवं व्यापार के सहयोग समझौते। इसके साथ ही डब्ल्यूटीओ के कमज़ोर होने की एक और प्रमुख वजह अमेरिका द्वारा बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के मुख्य संरक्षक की भूमिका से क़रीब-क़रीब छुट्टी ले लेना है।

हम अपनी सरकार से यह उम्मीद नहीं करते हैं कि वह डब्ल्यूटीओ के हुक्मों के सामने घुटने टेककर आत्मसमर्पण कर दे और फिर देश में किसानों से कहे कि डब्ल्यूटीओ की शर्तों के मुताबिक इन तथाकथित 'कृषि-सुधारों' को मानना सरकार की मजबूरी है, और इस तरह अपने देश की बहुसंख्य आबादी को संकट में डालकर कॉर्पोरेट पूँजी के स्वागत के अपने गोपनीय एजेंडे को आगे बढ़ाए। सरकार को इसके बिलकुल उलट ये करना चाहिए कि वह डब्ल्यूटीओ में खेती के सन्दर्भ में अपनी ज़रूरत के मुताबिक सही राष्ट्रीय नीतियाँ बनाने के लिए ज्यादा स्वायत्तता की जायज़ माँग को ताक़त के साथ उठाए।

खेती और उसके साथ जुडी हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सही तरह से संगठित करने का यह सही मौका है। जो नयी ग्रामीण व्यवस्था हो, वह ऐसी हो, जिसमें ज़मीन और पानी के इस्तेमाल की वैज्ञानिक और जनहितैषी नीतियाँ हों। इसी समय खेती की ज़मीन को गैर कृषि उपयोग और कॉर्पोरेट को देने के लिए प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। ऐसे में ही छोटे और सीमान्त किसानों के साझा खेती करने वाले समूह बनाये जा सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में सड़क, पानी, बिजली, विद्यालय, अस्पताल आदि बुनियादी सेवाओं का ढाँचा खड़ा करने के लिए उन मज़दूरों के भी समूह और कोऑपरेटिव बनाए जा सकते हैं, जिनकी खेती में ज़रूरत नहीं है, जो अतिरिक्त हैं, और जो केवल इसलिए गाँवों में हैं, क्योंकि बाहर भी उनके लिए कोई काम नहीं है। उन्हें खेती के उत्पादन के पहले और कटाई के बाद होने वाली आगे-पीछे की अनेक प्रक्रियाओं की ज़िम्मेदारी सौंपी जा सकती है, मसलन बीज संग्रहण, बीज तैयार करना और कटाई के बाद प्रसंस्करण, भण्डारण, परिवहन, आदि। ऐसी नयी तकनीकों की खोज पर काम हो सकता है, जो उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण की दुश्मन भी न हों। किस इलाके में किस चीज़ की ज़रूरत है और किस इलाके में कोई चीज़ इफरात में है, इसकी जानकारी के आधार पर कोऑपरेटिव समूहों के बीच वस्तुओं के संतुलन के आधार पर इलाकेवार योजना बनाई जा सकती है, ताकि कोऑपरेटिव का संजाल आपस में एक-दूसरे की मदद भी कर सके और एक दूसरे को मज़बूत भी बना सके। सार्वजनिक वितरण प्रणाली यानी राशन की दुकानों को खाद्यान्न संग्रहण के साथ जोड़ा जा सकता है। स्थानीय कोऑपरेटिव फसल इकट्ठी कर सकते हैं, उसका भण्डारण और उसका वितरण भी स्थानीय ग्रामीणों के कोऑपरेटिव समूहों को दिया जा सकता है। ऐसी स्थानीय परियोजनाओं को लिया जा सकता है, जिसमें मज़दूर ज्यादा लगते हों और मशीन कम। देश के अंदर के व्यापार और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में सार्वजनिक या कोऑपरेटिव सेक्टर की भूमिका को बढ़ाया जा सकता है। इस सबके साथ ही डब्ल्यूटीओ के अनुशासन में चल रहे कृषि उत्पादन और व्यापार के मामले में अधिक स्वायत्तता भी हासिल की जा सकती है।

किसान आंदोलन ने अब तक अपनी ताक़त और सब्र दोनों दिखाये हैं। साथ ही उन्होंने आंदोलन के नये तरीके भी दिखाये हैं और दिखाया है कि उनका आंदोलन संकीर्ण, स्वार्थ केंद्रित न होकर वाकई राष्ट्रीय चरित्र का है, इसलिए ये स्वाभाविक ही है कि इससे ऐसे मुकम्मल कदम उठाने की उम्मीद जागती है, जो अभी तत्काल सामने दिख रहे ज़मीन हड़पे जाने के, अपनी रोज़ी-रोटी छिनने के और अपनी पहचान पर मंडरा रहे खतरे से ही खुद को नहीं बचाएगा बल्कि एक ऐसी अर्थव्यवस्था की बुनियाद भी डालेगा, जो एक-दूसरे के साथ सहयोग, लोगों की आपसी एकजुटता और एक टिकाऊ विकास से बनी हो। ❑

मर्दों की बेलगाम लंपटता को खुली छूट का 'पर्व'

❑ श्रीनिवास

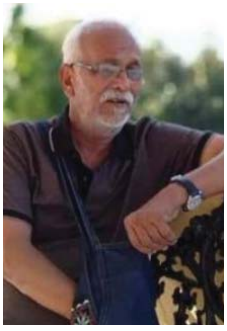

होली के मस्ती भरे माहौल में किसी के रंग में भंग नहीं डालना चाहता था. पर अब जुर्रत कर रहा हूँ. बचपन से होली को इंज्वाय करता रहा हूँ. कुछ हद तक आज भी करता हूँ. मगर बीते अनेक वर्षों से इस नतीजे पर पहुँचता गया हूं कि हम होली की 'सकारात्मक' बातों (कि होली में सबकी निजी पहचान मिट जाती है, कि सारे गिले-शिकवे भुला कर, सारे मतभेदों-मनभेदों को परे रख कर सभी एक दूसरे से गले मिलते हैं, कि इस दिन कोई बड़ा या छोटा नहीं, कोई अमीर या गरीब नहीं रहता आदि) पर इतने मुग्ध हैं कि इसके नकारात्मक पक्ष पर या तो हमारी नजर नहीं पड़ती या जानते हुए भी उसकी चर्चा से बचते हैं.

मानता हूँ कि त्यौहार मानव की उत्सव-प्रियता का ही प्रकटीकरण है, कि जीवंत समाज ऐसे पर्वों-त्योहारों से नई ऊर्जा ग्रहण करता है. पत्रकार हर त्यौहार के पहले मंहगाई का रोना रोकर बताते हैं कि इस बार दीवाली या होली फीकी रहेगी. मगर खुश रहना सिर्फ माली हालत पर निर्भर नहीं करता. लोग खुश होने के बहाने ढूंढ़ ही लेते हैं. और निश्चय ही होली उत्तर भारत में सामूहिक खुशी और उमंग का सबसे शानदार मौका और बहाना है. चूंकि इसकी अच्छाइयों (आम आदमी का त्यौहार, धार्मिक कर्मकांड नहीं के बराबर और वास्तविक अर्थों में पूरे समाज का उत्सव बनने की सम्भावना) को स्वीकार करता हूं, इसलिए यहाँ उनकी चर्चा गैरजरूरी है. मगर काश कि होली के पक्ष में किये जाने वाले सकारात्मक दावे पूरी तरह सच होते. काश कि जातियों, वर्गों और लैंगिक दृष्टि से गैरबराबर हमारा समाज कम से कम इस एक दिन भी समानता को जी पाता.

सबसे पहले तो यह लगभग मर्दवादी या मर्दों का त्यौहार है. मर्दों की बेलगाम लम्पटता को खुली छूट का 'पर्व' है. होली के मौके पर गाये जाने और बजने वाले गीतों को याद कर लें. सारी मर्यादा और महान संस्कृति की धज्जी उड़ाते और स्त्री-पुरुष के बीच के नैसर्गिक संबंधों को फूहड़ ढंग से उजागर करते ये गीत क्या मर्दों के अंदर छिपी गलीज और मूलतः स्त्री विरोधी मानसिकता का प्रदर्शन नहीं हैं? सिनेमा और टीवी सीरियलों की रंगीन होली को भूल जाइये. वहां तो एक हद तक स्त्री-पुरुष की बराबरी दिखती भी है. पौराणिक या पुरानी फिल्मों में भी शालीन होली ही नजर आती थी. मगर आज की फिल्मों में यदि होली का सीन हुआ, तो कुछ फूहड़ अंदाज में ही सही, स्त्री भी जम कर मस्ती लेती है. क्या हम अपने घर और मोहल्ले में वैसी होली की कल्पना भी कर सकते हैं? जरा होली के दिन के अपने आसपास के माहौल को याद कीजिये. कितनी लड़कियां या महिलाएं सड़कों पर नजर आती हैं? अपने मोहल्ले में वे भले ही झुण्ड में घूम लें, पर मजाल है कि शहर की मुख्य सड़कों पर या बाजार में निकल जाएँ. कुछ ने यह दुस्साहस कर भी लिया, तो उन्हें क्या और किस हद तक भुगतना पड़ सकता है, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है.

भारतीय संस्कृति के एक प्रमुख केंद्र बनारस के बारे में क्या कहेंगे? प्रसंगवश, बीएचयू में पढ़े हरिवंश (राज्यसभा के उप-सभापति, तब वे हमारे सम्पादक हुआ करते थे) से एक बार पूछा था- बनारस में होली के दिन असी चौराहे पर होने वाले कवि सम्मेलन, जहाँ शहर के तमाम प्रतिष्ठित लोग शामिल होते हैं- में प्रयुक्त भाषा के बारे में जो सुना है, वह कितना सच है? उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा था- 'आपने जो सुना होगा, कम सुना होगा.' मुझे शक है कि उस मंच पर और भीड़ में कोई महिला भी होती होगी.

कोई शक नहीं कि यह पूरी प्रकृति के झूमने का मौसम होता है, जब पेड़-पौधों के साथ ही समस्त जीव-जगत सृजन की कामना और उत्तेजना-उमंग से लबरेज होता है. कह सकते हैं कि होली इस उल्लास और यौवन-आवेग के छलक पड़ने का प्रतीक पर्व है. तभी तो इसे वसंतोत्सव भी कहते हैं, मदनोत्सव भी. कुछ लोग तो इसे 'वेलेंटाइन डे' का भारतीय रूप या विकल्प भी कह देते हैं. मगर काश कि यह सच होता.

विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण प्राकृतिक है, पर यह एकतरफा नहीं हो सकता. लिंग-योनि की पूजा करने वाला यह देश, 'कामसूत्र' के रचयिता का यह देश, मंदिरों में उत्कीर्ण मिथुन मूर्तियों का यह देश, 'काम' को जीवन का आवश्यक कर्म मानने वाला यह देश कालांतर में स्त्री विरोधी होता गया. काम या संभोग मानो वर्जित शब्द हो गये. स्त्री-पुरुष संबंधों पर धर्म, नैतिकता और परंपरा के नाम पर तरह तरह के अवरोध लगा दिये गये. नतीजतन हम पाखंड में जीने लगे, एक पाखंडी समाज बन गये. स्त्री 'भोग' की 'वस्तु' बन गयी. सारे निषेध उसके हिस्से आये और मर्दों को खुली छूट मिल गयी.

दो वर्ष पहले एक होली मिलन समारोह में शामिल होने का मौका मिला. सभी धर्मों और जातियों-वर्णों के लोग सहजता से गले मिले. अच्छा लगा. यह इस देश की साझा संस्कृति का एक जीवंत उदाहरण था. लेकिन समारोह में एक भी महिला नहीं थी! सिवाय एकाध स्थानीय सफाईकर्मी महिला के. किसी को कहा भी नहीं गया था कि अपनी पत्नी के साथ आयें!

बात सिर्फ इसके स्त्री विरोधी स्वरूप की नहीं है. यह दावा भी पूरी तरह सही नहीं है कि इस दिन समाज का हर तबका उंच-नीच का भेद मिटा कर एक हो जाता है. शहरों में तो फिर भी गनीमत है, मगर जिन गांवों में असली भारत बसता है, अपवादों को छोड़ कर हर जाति और समुदाय होली में भी अलग थलग ही रहता है. होली गाने वाली उनकी टोली भी अपने ही टोले तक सीमित रहती है. वैसे होली का यह नकारात्मक पक्ष भी असल में समाज का ही बुनियादी दोष है.

फिर भी होली में गैरबराबरी को भूल कर एक होने की संभावना तो है ही. उम्मीद करें कि एक दिन हम सही में अपने तन के साथ मन को भी एक रंग में रंगने में कामयाब होंगे. और तब होली सचमुच समरसता का शानदार पर्व बनेगा, क्योंकि इतनी नकारात्मकता के बावजूद होली आम आदमी का त्यौहार है. चूँकि होली में धार्मिक कर्मकांड नहीं के बराबर होता है, इसलिए यह धार्मिक के बजाय लोक त्यौहार ज्यादा लगता है. मुझे इसकी यही विशेषता अधिक आकर्षित करती तो रही है, मगर इसके स्त्री विरोधी स्वरूप की अनदेखी भी नहीं कर पाता. ❑

गांधी, पटेल, सुभाष

भारतीय राजनीति का हालिया आख्यान

❑ प्रियंवद

गांधी से पहली मुलाकात में ही सुभाष पर उनका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा था। 1920 में इंग्लैंड में इंडियन सिविल सर्विस (आईसीएस) की परीक्षा पास करने के बाद, सुभाष ने मई 1921 में नौकरी छोड़ी और धधकती देशभक्ति लेकर भारत लौट आये।'' आईसीएस की परीक्षा में सुभाष ने चौथा स्थान प्राप्त किया था। आईसीएस की नौकरी तब देश के युवाओं के लिए बहुत सम्मान की बात होती थी। देश के लिए सुभाष का यह बलिदान, उसी समय उन्हें युवा पीढ़ी का नायक बना गया था। सुभाष 6 जुलाई को बम्बई पहुंचे और उसी दोपहर गांधी से पहली बार मिले। मणिभवन के एक कमरे में फर्श पर बैठे गांधी से सुभाष ने अपनी शंकाओं, जिज्ञासाओं के समाधान चाहे। गांधी ने धैर्य से उनके सवालों के जवाब दिये। सुभाष के तीन मुख्य प्रश्न थे, जिनके उत्तर उन्होंने चाहे थे। तीनों प्रश्न गांधी के असहयोग आंदोलन की कार्यप्रणाली, नीति और उद्देश्य प्राप्ति से जुड़े थे। गांधी के उत्तरों से सुभाष संतुष्ट नहीं हुए थे।

गांधी के मन में भी सुभाष के प्रति शंकाएं सदैव रहीं। गांधी को हमेशा लगता रहा था कि सुभाष का अहिंसा में कोई विश्वास नहीं है। न तो दर्शन की तरह और न ही लक्ष्य तक पहुंचने के साधन की रणनीति की तरह। 1928 के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में सुभाष की फौजी जनरल की वर्दी की गांधी ने निन्दा की थी। सुभाष चितरंजनदास के लगभग अंधभक्त थे। गांधी के अंदर चितरंजनदास को लेकर भी अपनी कुछ शंकाएं, कुछ पूर्वाग्रह रहे थे। गांधी के असहयोग आंदोलन के शुरू में सबसे बड़े विरोधी वही थे। गांधी उनका यह असर सुभाष पर भी देखते थे।

नेहरू और सुभाष की जोड़ी के बनने तक, गांधी ने नेहरू के अंदर का लचीलापन या कि एक तरह की भावुक अस्थिरता देख ली थी, जिसके बाद ही वह इस बात के प्रति आश्वस्त हो सके थे कि वह नेहरू को धीरे-धीरे अपने अनुरूप ढाल लेंगे। सुभाष में गांधी को यह संभावना कभी नहीं दिखी। इसके विपरीत सुभाष अपने मार्क्सवादी तथा गांधी विरोधी विचारों में दृढ़ होते चले गये। अहिंसा पर उनका विश्वास पहले भी नहीं था, जैसा कि गांधी का आकलन था। कालांतर में आजाद हिन्द फौज के रूप में सुभाष के पूरे चिन्तन, मूल प्रवृत्ति व राजनैतिक जीवन की अभिव्यक्ति व परिणति हुई। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने की सुभाष की सदैव यही वास्तवकि रणनीति रही थी। उनका वास्तविक स्वप्न भी रहा था। विवेकानन्द और अरविन्द के प्रभामंडल की छाया में पले-बढ़े और निरंतर क्रांतिकारी युवकों को जन्म देने वाली बंगाल की उर्वरा धरती पर जन्मे सुभाष के विचार, नीति और दृष्टि, सदैव ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एक सशस्त्र, संपूर्ण युद्ध में ही निहित थी। अंततः सुभाष ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध यह युद्ध किया भी।

गांधी ने 1929 में जिस समय नेहरू को अध्यक्ष चुना था, देश में युवाओं का एक बड़ा वर्ग ऐसा था, जो उग्रवादी था, जल्दी में था और आजादी पाने के लिए, बगैर किसी आधारभूत ढांचे और योजनाओं के, छिटपुट दलों के रूप में, और बहुधा क्षेत्रीय स्तर पर ही अंग्रेजों से सीधा संघर्ष चाहता था। युवाओं के इस प्रवाह को थामने तथा इसे कांग्रेस की नीतियों व संगठन से जोड़ने के लिए, उनके बीच अत्यधिक स्वीकृत व लोकप्रिय नेहरू गांधी के लिए सर्वथा उपयुक्त थे। मेरठ षड्यंत्र केस के अभियुक्तों के छूटने तथा 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' के सक्रिय होने के बाद, 1936 में साम्यवादियों का भी एक प्रवाह तैयार हो गया था, जिसने किसानों, छात्रों, मजदूरों को अपने साथ जोड़ते हुए उनके संगठन खड़े कर लिये थे। वे उन्हें जन संघर्ष तथा वर्ग संघर्ष के लिए तैयार कर रहे थे। रियासतों के विरुद्ध जनमोर्चे बना रहे थे। इन संगठनों में हिंसा का खुला समर्थन था। कांग्रेस के अंदर एक अलग मोर्चे के रूप में, ये सब वामपंथी संगठित हो रहे थे। इनमें सोशलिस्ट थे, कम्युनिस्ट थे, एम.एन. राय गुट के लोग थे और उग्रवादी वामपंथी भी थे।

नेहरू 1936 में दो बार कांग्रेस अध्यक्ष रह चुके थे (1937 में अध्यक्ष का चयन नहीं हुआ था)। 1938 के लिए कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव होना था। वामपंथियों के संगठन, प्रभाव व प्रवाह को रोकने के लिए नेहरू के बाद कांग्रेस में सुभाष ही सबसे उपयुक्त थे, जिनका इन वामपंथियों पर तथा इनके जनांदोलनों और मोर्चों पर गहरा प्रभाव था। गांधी ने, बावजूद अपनी असहमतियों और शंकाओं के, कांग्रेस के अंदर प्रभावशाली ढंग से समाहित करने के लिए, फरवरी 1938 के हरिपुरा अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए सुभाष को चुना। गांधी ने हरिपुरा अधिवेशन के एक महीने पहले, 1 नवंबर 1937 को पटेल को पत्र में लिखा, 'मैंने देखा है कि सुभाष किसी भी तरह निर्भर करने योग्य नहीं हैं, फिर भी, कोई दूसरा अध्यक्ष नहीं हो सकता।' सुभाष कई महीनों तक जेल में रहने के बाद मार्च 1937 में छूटे थे, फिर दिसंबर 1937 में ही, यूरोप के छोटे प्रवास पर चले गये थे। अधिवेशन से कुछ पहले ही वह भारत लौटे थे। गांधी और सुभाष के बीच सुभाष के अध्यक्ष बनने पर सहमति हो चुकी थी। डी. पी. ने लिखा है कि 'यूरोप जाने से पहले उन्होंने (सुभाष ने) मुझे यह बता दिया था कि गुजरात में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के लिए गांधी उन्हें अध्यक्ष बनाना चाहते हैं।' यह ध्यान देने की बात है कि अध्यक्ष सुभाष के जोर देने के बाद भी, नेहरू ने उस वर्ष कांग्रेस का महामंत्री बनने से इनकार कर दिया था। सुभाष इससे आहत थे। उन्होंने इसे अपने अध्यक्ष बनने के प्रति नेहरू और सोशलिस्टों का असहयोग माना था। कांग्रेस के सोशलिस्टों पर नेहरू का सदैव से प्रभाव था। हरिपुरा अधिवेशन में सुभाष को अपने प्रति यदि नेहरू का असहयोग दिखा, तो वह प्रतिद्वन्द्विता की भावना के साथ कांग्रेस के अंदर अनेक वामपंथी घटकों और उनकी आपसी राजनीति का भी

परिणाम था, जिसे अच्छी तरह समझ कर ही गांधी ने सुभाष को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया था। गांधी ने कांग्रेस के अंदर की वामपंथी नब्ज पर कभी अपनी पकड़ ढीली नहीं की थी। कांग्रेस के अंदर इन सब प्रकरणों व जटिल प्रसंगों के अलावा, सुभाष के लिए सबसे बड़ा टकराव व चुनौती का एक बिन्दु पटेल भी थे, जो निश्चित रूप से, किसी भी प्रकार से सुभाष के प्रति सहृदय नहीं थे।

19 फरवरी 1938 को हरिपुरा (गुजरात) में अधिवेशन हुआ। यह पटेल के प्रभाव का क्षेत्र था। अधिवेशन की समस्त व्यवस्थाएं पटेल ने कीं। अधिवेशन में कांग्रेस ने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये। वामपंथियों की गतिविधियों, सक्रियताओं और दबावों की वजह से, कांग्रेस के लिए अपनी कुछ नीतियां स्पष्ट करना जरूरी हो गया था। ये प्रस्ताव रियासतों के आंदोलनों के संबंध में, किसान सभाओं के गठन व संघर्ष के संबंध में, राजनीतिक कैदियों के प्रश्न पर, विशेष रूप से यूपी में काकोरी कांड के अभियुक्तों को छोड़ने पर गवर्नर की आपत्ति के बाद संयुक्त प्रांत और बिहार मंत्रिमंडलों के त्यागपत्र के संबंध में, जंजीबार के भारतीय व्यापारियों के संबंध में थे। नीतिगत मतभेदों को लेकर यह कांग्रेस के वामपंथी और दक्षिणपंथियों की सीधी मुठभेड़ थी। विशेष रूप से उन जनांदोलनों को लेकर, जो रियासतों के विरुद्ध वहां की जनता में और जमींदारों के विरुद्ध किसानों में जन्म ले चुके थे। वामपंथी इन आंदोलनों को, अपनी मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की नीति पर चलते हुए, अपने मोर्चे से जोड़कर, हिंसक रूप से भी सक्रिय करना चाहते थे। इसके विपरीत कांग्रेस रियासतों और जमींदारों के समर्थन में दिखती हुई-सी, इनके बीच किसी हिंसक संघर्ष को टालने की नीति पर चलती थी। इन्हें कांग्रेस की छतरी के नीचे और पूरी तरह अहिंसक तथा वामपंथियों के प्रभाव से मुक्त रखना चाहती थी। ये संगठन/आंदोलन कांग्रेस के दायरे में रहकर चलें, उसके संगठन का अंग हों, उसकी नीतियों का पालन करें, यह कांग्रेस का दक्षिणपंथी गुट चाहता था। वामपंथी मोर्चा इसके विरुद्ध, इन्हें स्वतंत्र रूप से, 'सर्वहारा की तानाशाही' स्थापित करने के लक्ष्य की ओर ले जाना चाहता था। इस तरह कांग्रेस के अंदर होते हुए भी, बाहर मोर्चों पर वामपंथी कांग्रेस को सीधी चुनौती दे रहे थे। जाहिर है वामपंथ मोर्चा आने वाले समय में कांग्रेस के लिए बड़ा संकट पैदा कर सकता था। गांधी और उनके समर्थकों को इससे निबटना था। पटेल उनके मुख्य सेनापति थे। पटेल दक्षिणपंथी गुट का नेतृत्व करते थे। कांग्रेस की नीतियों पर अपने विचार दृढ़तापूर्वक रखते थे।

हरिपुरा में सुभाष का कांग्रेस के अध्यक्षीय पद से दिया गया भाषण कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। विशेषकर ब्रिटिश सरकार को संघर्ष और युद्ध की खुली चुनौती देने के रूप में। सुभाष का भाषण गांधी तथा कांग्रेस की घोषित नीतियों से कुछ कदम आगे वामपंथ की ओर तथा ब्रिटिश सरकार से हर तरह का संघर्ष करने की ओर था। सुभाष के प्रति अपनी समस्त शंकाओं के बाद भी यदि गांधी ने सुभाष को अध्यक्ष बनाना तय किया था, तो इसके पीछे अन्य कारणों के अलावा, एक संभावित कारण यह भी माना जाता था कि गांधी स्वयं नहीं, पर प्रकारांतर से, ब्रिटिश सरकार को यह संकेत देना चाहते थे कि अब कांग्रेस के अंदर युवा, मजदूर, किसान, वामपंथ और उग्रपंथ का वर्चस्व बढ़ेगा और ब्रिटिश सरकार इस परिवर्तन को गंभीरता से ले और भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में कांग्रेस के साथ बैठकर विचार करे। गांधी संभवतः यह संकेत भी देना चाहते थे कि उनकी अहिंसा, जिसके प्रति अंग्रेज सरकार सदैव अपने हित में आश्वस्त रही थी, संभव है अपना नियंत्रण जनता पर खो दे। एक संकेत यह भी हो सकता था कि अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को देखते हुए आगामी संभावित विश्वयुद्ध में, जिसका संकट गहराने लगा था, कांग्रेस की नीति स्पष्ट है कि वह ब्रिटिश सरकार का सहयोग नहीं करना चाहेगी। हालांकि यह कठिन है कि गांधी सुभाष के माध्यम से ब्रिटिश सरकार को ऐसा कोई संदेश देना चाहते होंगे, पर सुभाष ने जरूर अपने अध्यक्षीय भाषण में अंग्रेज सरकार को ये संदेश स्पष्ट तथा असंदिग्ध रूप में दे दिये थे। सुभाष ने कांग्रेस की विदेश नीति के संबंध में कहा कि—

'मैं इस काम को बहुत महत्त्व देता हूं, क्योंकि मुझे विश्वास है कि आगामी वर्षों में, अंतर्राष्ट्रीय घटनाएं भारत के स्वधीनता संग्राम के पक्ष में जायेंगी। हमें निश्चित रूप से इन वैश्विक परिस्थितियों का, उनके प्रत्येक स्तर पर ज्ञान होना चाहिए और हमें यह पता होना चाहिए कि हम कैसे उनका लाभ उठा सकते हैं...हमारी विदेश नीति के संदर्भ में मेरा पहला सुझाव यह है कि हमें किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति या उसकी स्थिति से प्रभावित नहीं होना चाहिए। हम प्रत्येक देश में उन स्त्री और पुरुषों को तलाश लेंगे, जो भारत की स्वतंत्रता से सहानुभूति रखते हैं। इस बात का कोई अर्थ नहीं कि उनके राजनैतिक दृष्टिकोण क्या हैं। इस मामले में मैं सोवियत कूटनीति का हिस्सा होना चाहूंगा।'

सुभाष का आशय स्पष्ट था कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, ब्रिटेन के विरोधी देश, जो उस समय अनिश्चित थे कि कौन होंगे, उनके लिए सहयोगी की तरह होंगे। यदि ऐसा भी हुआ कि ब्रिटेन को नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली और जापानी साम्राज्यवाद से लड़ना पड़ा, तो अपनी स्वतंत्रता के लिए भारत ब्रिटेन के विरुद्ध उनका साथ दे सकता है। सुभाष के अंदर तानाशाहों के प्रति प्रशंसा का भाव सदैव से था।

अध्यक्षीय भाषण में ही सुभाष ने औद्योगीकरण का पक्ष भी लिया। उद्योगों पर राष्ट्रीय नियंत्रण की बात कही—

'आर्थिक समस्या के समाधान हेतु, कृषि संबंधी विकास पर्याप्त नहीं होगा। औद्योगिक विकास हेतु राष्ट्रीय मिल्कियत व राष्ट्रीय नियंत्रण वाली एक संपूर्ण नीति बनानी ही होगी। पुराने की जगह एक नया औद्योगिक ढांचा खड़ा करना होगा। पुराना ढांचा अत्यधिक उत्पादन के कारण विदेश में और विदेशी शासन के कारण देश में ध्वस्त हो चुका है। हम आधुनिक औद्योगीकरण को कितना भी नापसंद करें और उसके विकास क्रम में आने वाले दुर्गुणों की निन्दा करें, हम औद्योगीकरण से पहले की स्थिति की ओर वापस नहीं जा सकते हैं, भले ही हम ऐसा करने के इच्छुक हों। इसलिए उचित होगा कि हम विरोध त्यागकर औद्योगीकरण की तरफ ध्यान दें और ऐसे उपाय खोजें जिससे इसके दुर्गुणों को न्यूनतम किया जा सके और साथ ही कुटीर उद्योग को पुनर्जीवित करने की संभावनाएं तलाशें, जहां उनकी फैक्ट्रियों से अवश्यंभावी प्रतियोगिता के समक्ष फलने-फूलने की संभावना हो।'

सुभाष के भाषण में बड़े उद्योगों की

आवश्यकता, उनका समर्थन और उन पर राष्ट्रीय नियंत्रण की नीति सीधे-सीधे, गांधी के ग्रामीण और कुटीर उद्योग की नीति के विरुद्ध थी। गांधी ने इन कुटीर उद्योगों की प्रगति और उन्नति की दृष्टि से ही 'अखिल भारतीय चरखा सेवक संघ' और 'अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग संघ' का गठन किया हुआ था। अपने अध्यक्षीय भाषण में ही सुभाष ने राष्ट्रीय योजना समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) के गठन की आवश्यकता की बात कही, जिसे आर्थिक समस्याओं के अध्ययन, उद्योगों के विकास और समाजीकरण की योजना बनानी थी। नेहरू बाद में इसके अध्यक्ष चुने गये। 17 दिसंबर 1938 को बम्बई में इसकी उद्घाटन बैठक में सुभाष ने उन आशंकाओं का जिक्र किया, जो इस औद्योगीकरण की योजना को लेकर पैदा हो रही थीं। जाहिर है यह सब, गांधी के अत्यन्त प्रिय, 'कुटीर उद्योग के समर्थन' और 'बड़े स्तर के औद्योगीकरण की नीति के विरुद्ध' की विरोधी नीतियां थीं।

1938 के अंत तक सुभाष और गांधी तथा उनके समर्थकों की विचारधारा के बीच मतभेद बहुत गहरे हो गये। सितंबर 1938 में हिटलर, मुसोलिनी और ब्रिटेन तथा फ्रांस के बीच हुए म्यूनिख समझौते ने ब्रिटेन को तानाशाहियों के पक्ष में खड़ा कर दिया और जर्मनी तथा इटली की देशों को निगलने की नीति को मूक सहमति देकर, उनके सम्मुख दयनीय समर्पण कर दिया। *'ब्रिटेन का संकट भारत का अवसर है'* यह सुभाष की नीति थी, पर कांग्रेस अपने पूरे इतिहास में, इस नीति पर कभी नहीं चली थी कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, किसी युद्ध में वह ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने वाली शक्तियों का साथ दे। यह देखा जाना चाहिए कि प्रथम विश्वयुद्ध की पूर्व संध्या पर कांग्रेसियों के एक प्रतिनिधि मंडल ने, जिसमें बी. एन. बसु, जिन्ना, लाजपतराय, एन.एम. समर्थ और एस. सिन्हा प्रमुख थे, भारत के राज्य सचिव को एक ज्ञापन 'ब्रिटेन के राजा' के लिए दिया था, जिसमें स्वेच्छा से, यथासामर्थ्य, भारत के समस्त स्रोतों को, हिज मैजेस्टी की सेवा में सुरक्षित करने का आश्वासन दिया गया था। भारतीय सेना ब्रिटिश साम्राज्य की तरफ से फ्रांस में लड़ी, मेसोपोटामिया के रेगिस्तानों में लड़ी, अफ्रीका और दूसरे मोर्चों पर लड़ी। लगभग दस लाख भारतीय सिपाहियों ने इस युद्ध में हिस्सा लिया और आंकड़ों के अनुसार 36,696 भारतीय सिपाहियों की अलग अलग युद्ध मोर्चों पर मृत्यु हुई। इस युद्ध में भारतीयों ने जिस तरह ब्रिटिश साम्राज्य का साथ दिया, उससे अंग्रेज स्वयं आश्चर्यचकित थे। ब्रिटेन से उसका संघर्ष संसदीय लोकतंत्र के अंतर्गत संविधान के सुधारों तथा अधिकारों की मांग को लेकर होने वाले अहिंसक संघर्ष से रहा था, जिसमें वार्ताओं के, समझौतों के पारस्परिक विश्वास के द्वार हमेशा खुले रहते थे।

सुभाष तथा गांधी और उनके समर्थकों के बीच ये मतभेद चलते रहे। जब सुभाष ने गांधी के समर्थकों पर खुले रूप में उकसाने वाले और कटु भाषा में आरोप लगाये कि ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष नहीं, समझौता चाहते हैं, विशेष रूप से 1935 ऐक्ट के भारतीय संघ के गठन की अवधारणा पर भी, तब दोनों पक्षों में कटुता बहुत बढ़ गयी।

पटेल ने 20 फरवरी 1938 को, यानी सुभाष के अध्यक्षीय भाषण के दो महीने पहले ही, राजेन्द्र प्रसाद को पत्र लिखा था, 'नारीमन ने बम्बई में कम्युनिस्टों से हाथ मिला लिया है, हालांकि खुले तौर पर नहीं,...सोशलिस्ट संगठित हो रहे हैं। कृपया देखें कि प्रतिनिधियों के चुनाव में आप समस्त गांधी विरोधी तत्त्वों को खारिज कर दें। एक मजबूत पक्षधरता का समय आ गया है।'

जुलाई 1938 में पटेल ने प्रसाद को लिखा, 'जवाहर कम से कम चार महीनों के लिए विदेश गया है। आप भी छह महीने के लिए बाहर जा रहे हैं और हमें ऐसे अध्यक्ष के साथ काम करना है, जिसे अपना खुद का काम ही नहीं मालूम।'

ब्रिटेन के विरुद्ध सुभाष की फासिस्ट देशों को समर्थन करने की नीति व घोषणा कांग्रेस के अंदर गहरी बेचैनी पैदा कर रही थी। कांग्रेस का इतिहास, नीति और झुकाव कभी इस तरह के नहीं रहे थे कि वह ब्रिटिश साम्राज्य तथा शासन के विरुद्ध कोई ऐसी आक्रामक नीति अपनाये, जो पूरी तरह उसे नष्ट करती हो। गांधी तो 1928 तक कांग्रेस के पूर्ण स्वाधीनता के उद्देश्य के पक्ष में ही नहीं थे।

इसके बावजूद सुभाष, गांधी और कांग्रेस के बहुत अधिक विरोधी और उनके प्रति आक्रामक नहीं थे। उन्होंने अपनी भिन्न नीतियों की बात जरूर की, पर उनके क्रियान्वयन के लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठाया। फिर भी, कांग्रेस के दक्षिणपंथियों और गांधी को भी, 1935 ऐक्ट की संघ की योजना में, दक्षिणपंथियों के ब्रिटिश सरकार से कोई समझौता होने की संभावना के विरोधी तथा विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के विरुद्ध फासिस्ट सहयोग के लिए तैयार दिखते सुभाष, एक बड़ी चेतावनी के रूप में दीखने लगे थे। उन्होंने तय किया कि अगले वर्ष त्रिपुरी में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष सुभाष नहीं होने चाहिए। 1938 के अपने कार्यकाल में सुभाष कोई विशिष्ट वामपंथ समर्थक छवि नहीं बन पाये और सिवाय भाषणों के, गांधी के लिए कोई संकट पैदा नहीं कर सके थे।

1938 के अंत में अगले वर्ष के लिए कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव होना था। कृपलानी ने लिखा है कि सुभाष दूसरी बार अध्यक्ष बनना चाहते थे, पर गांधीजी ने उन्हें स्पष्ट कर दिया था कि वह उनका समर्थन नहीं करेंगे। कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक इसी सिलसिले में बारदोली में हुई। सुभाष इस बैठक में उपस्थित नहीं थे। विभिन्न प्रांतों से चार व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित किये गये थे। सुभाष, मौलाना आजाद, पटेल और आंध्र के पट्टाभि सीतारमैय्या। जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के बढ़ते प्रभाव और संगठन को देखते हुए तथा कांग्रेसी प्रांतों की सरकारों पर उनके आक्रमण को कुछ भोंथरा करने के लिए, गांधी मौलाना आजाद को अध्यक्ष बनाना चाहते थे। मौलाना का नाम तय होने और उनके द्वारा सहमति देने पर, पटेल ने अपना नाम वापस ले लिया। वारदोली से मौलाना बम्बई गये और वहां से उन्होंने अपना नाम वापस लेने का पत्र भेज दिया। उन्होंने स्वास्थ्य का कारण बताते हुए पट्टाभि के नाम का समर्थन किया। पर कारण संभवतः यही था कि वह भी कलकत्ता के थे और बंगाल में सुभाष की लोकप्रियता को देखते हुए, उनके मुकाबले मैदान में नहीं दिखना चाहते थे। मौलाना का पत्र न आया होता तो संभव था कि पटेल का नाम ही कांग्रेस की तरफ से आता और सुभाष तब अध्यक्ष पद की दौड़ से हट जाते। पर पटेल अपना नाम वापस ले चुके थे। मौलाना ने भी मना कर दिया। अब दो ही व्यक्ति अध्यक्ष पद के लिए रह गये थे। सुभाष के मुकाबले पट्टाभि एक कमजोर नाम था। सुभाष

से पहले नेहरू दो बार लगातार अध्यक्ष रह चुके थे। सुभाष का कहना था कि उनका भी दूसरी बार अध्यक्ष बनना उचित व तर्कसंगत है। वह दो विशेष बिन्दुओं पर, गांधी और कार्यसमिति के सदस्यों से अपने गहरे मतभेद प्रकट कर चुके थे। भारतीय संघ का विरोध तथा छह महीने की चेतावनी देकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन शुरू करना। सुभाष ने कांग्रेस कार्यसमिति के पट्टाभि के विरुद्ध अध्यक्ष पद के लिए लड़ना तय कर लिया। मौलाना ने 20 जनवरी 1939 को अपना नाम वापस लिया था। 21 जनवरी को सुभाष ने एक बयान दिया, जिसमें अध्यक्ष पद का चुनाव लड़ने का कारण 'अंतर्राष्ट्रीय तनाव' और 'संघ के विरुद्ध संघर्ष' बताया। सुभाष के बयान के बाद कांग्रेस के अध्यक्ष पद के चुनावी संघर्ष को लगभग अपरिहार्य मानते हुए, पटेल ने भी तैयारी शुरू कर दी। त्रिपुरी में कांग्रेस अध्यक्ष पद का चुनाव अब दो विचारधाराओं की खुली और सीधी मुठभेड़ था, जिसमें एक तरफ सुभाष, उनकी नीतियां, उद्देश्य और उनके वामपंथ समर्थक थे, जिनमें कम्यूनिस्ट, समाजवादी, कांग्रेस के वामपंथी, एम. एन. राय गुट, किसान सभाएं, मजदूर संघ, उग्र युवा आदि थे। दूसरी तरफ गांधी, गांधी की नीतियां, कार्यक्रम, उद्देश्य और उनके समर्थक थे, जो गांधीवादी या दक्षिणपंथी कहे जाते थे। पहली विचारधारा का नेतृत्व सुभाष ने किया, दूसरी का पूरी तरह पटेल ने। वस्तुतः प्रत्यक्ष और ऊपरी तौर पर तो नहीं, पर सतह के नीचे यह सुभाष और पटेल की सीधी मुठभेड़ थी। इस संदर्भ में किये गये समस्त पत्राचार में सुभाष ने अपने विरोधियों के रूप में 'सरदार और उनके साथी' शब्द का इस्तेमाल किया है। पटेल की नीतियों और वैचारिक बिन्दुओं को गांधी का पूरा समर्थन प्राप्त था।

पटेल ने सुभाष के 21 जनवरी के बयान के विरुद्ध कार्यसमिति के सदस्यों को तार भेजा। पटेल ने तार के साथ जो बयान भेजा उसमें सुभाष से अपील की गयी थी कि अध्यक्ष पद के कारण कांग्रेस के अंदर विभाजन न करें। कार्यसमिति के 6 सदस्यों ने तत्काल बयान पर अपनी सहमति प्रस्तुत कर दी। 24 जनवरी, 1939 को सुभाष के बड़े भाई शरत बोस ने पटेल को तार दिया— *क्रमशः अगले अंक में*

पुण्यतिथि : 4 अप्रैल पर

मार्टिन लूथर किंग जूनियर : जिनके लिए ईसा मसीह प्रेरणास्रोत थे और महात्मा गांधी मार्गदर्शक

❑ **अव्यक्त**

अपनी आत्मकथा में मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अपने विचारों और कार्यों पर महात्मा गांधी के प्रभाव के बारे में काफी विस्तार से लिखा है। चार जुलाई, 1965 को अमेरिका हर साल की तरह अपना स्वतंत्रता दिवस मना रहा था. मार्टिन लूथर किंग जूनियर भी हमेशा की तरह अटलांटा के उसी चर्च में प्रवचन दे रहे थे, जिसमें कभी उनके पिता प्रवचन किया करते थे. अक्सर बोलते-बोलते किंग जूनियर को भारत और महात्मा गांधी का कोई प्रसंग याद आ ही जाता था और उस दिन भी ऐसा ही हुआ, लेकिन उस दिन का प्रसंग श्रोताओं के लिए थोड़ा हिला देने वाला था.

किंग जूनियर ने कहा, 'मुझे याद है, जब मैं और मिसेज किंग भारत में थे तो एक दोपहर हम भारत के सुदूर दक्षिणी राज्य केरल के त्रिवेंद्रम शहर गए. उस दोपहर मुझे वहां एक स्कूल में बोलना था. वह अपने देश के हाई स्कूल जैसा ही था. इस स्कूल में बड़ी संख्या में ऐसे विद्यार्थी भी थे, जो पहले अछूत कहे जाने वाले लोगों के बच्चे थे. प्रिंसिपल ने मेरा परिचय दिया और परिचय के आखिर में कहा- 'बच्चों, अब मैं आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूंगा संयुक्त राज्य अमेरिका के एक साथी अछूत को.' एक पल के लिए तो मैं थोड़ा भौचक्का रह गया और खीज भी गया कि अब मुझे अछूत के नाम से बुलाया जाएगा...'

'...लेकिन फिर मैंने इस सच्चाई के बारे में सोचना शुरू किया. मेरे दो करोड़ से अधिक भाई-बहन अभी भी इस दौलतमंद समाज में गरीबी के एक घुटन भरे पिंजरे में घुट रहे हैं. मैंने इस सच्चाई के बारे में सोचना शुरू किया कि मेरे दो करोड़ से अधिक भाई बहन अभी भी हमारे देश के बड़े शहरों में चूहों से भरी, असहनीय मलिन-बस्तियों में रहने को मजबूर हैं, बिना सुविधा वाले स्कूलों में जा रहे हैं, उनके मनोरंजन की पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं. और फिर मैंने खुद से कहा- 'हां, मैं एक अछूत हूं. और संयुक्त राज्य अमेरिका का हर नीग्रो एक अछूत है.'

बाद में एक अन्य अवसर पर उन्होंने छूआछूत उन्मूलन में महात्मा गांधी के योगदान को इस तरह याद किया, 'छूआछूत के खिलाफ सबसे पहला काम गांधी ने यह किया कि एक 'अछूत' लड़की को अपनी बेटी के रूप में गोद ले लिया. उन्होंने उसे अपने आश्रम में अपने साथ रखा. उन्होंने अपने जीवन से दिखाया कि छूआछूत को जाना ही होगा. और फिर एक दिन महात्मा गांधी उठ खड़े हुए और अपने देशवासियों से कहा-तुम इन अछूतों का शोषण कर रहे हो. भले ही ब्रिटेन की दासता से निजात पाने के लिए हम जी-जान से लड़ रहे हैं, लेकिन हम अपने ही इन लोगों का शोषण कर रहे हैं और हम उनसे उनका आत्मत्व और आत्म-सम्मान छीन रहे हैं. गांधीजी ने कहा- मैं तब तक भोजन ग्रहण नहीं करूंगा, जब तक सवर्णों के नेता अछूतों के नेता के साथ आकर मुझे यह नहीं कहते कि अब छूआछूत समाप्त होगा और मंदिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खोल दिए जाएंगे.'

1950 में 21 साल के इस अश्वेत अमेरिकी नौजवान के हृदय में एक खलबली मची हुई थी. मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव और सामाजिक संघर्ष का हल आखिर क्या हो, यह प्रश्न उसके मन में घूमता रहता. घूम-फिरकर वह बार-बार ईसा मसीह की शरण में जाता कि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम ही इसका एकमात्र इलाज है. लेकिन कैसे? इसका सामाजिक या राजनीतिक तरीका क्या हो? इस प्रश्न पर आकर वह अटक जाता था. अंत में तो वह इस हद तक निराश हो गया कि उसने तय कर लिया कि अमेरिका में भी श्वेत-अश्वेत के बीच भेदभाव को समाप्त करने का एकमात्र तरीका हथियार उठाकर सशस्त्र संघर्ष करना ही है.

उसी दौरान उन्होंने डच मूल के प्रसिद्ध अमेरिकी शांतिवादी एजे मस्टे का एक व्याख्यान सुना. मस्टे के प्रेम, शांति और भाईचारे के संदेश ने उन्हें बहुत प्रभावित तो किया, लेकिन तरह-तरह के भेदभाव, शोषण,

अन्याय और युद्धों से भरी दुनिया में उन्हें उनका शांतिवाद बहुत ही अव्यावहारिक लगा. इसके बाद जब उन्होंने नीत्शे को पढ़ा, तो प्रेम के जरिए सामाजिक अन्याय को दूर करने में उनकी रही-सही आस्था भी जाती रही. फिर उन्हें पता चला कि हॉवर्ड यूनिवर्सिटी के डॉ मोर्डेकै जॉनसन महात्मा गांधी के बारे में कोई व्याख्यान देने वाले हैं. वे इस व्याख्यान को सुनने के लिए फिलाडेल्फिया के लिए चल पड़े. डॉ जॉनसन हाल ही में भारत का दौरा करके लौटे थे और गांधी से खासे प्रभावित थे. उन्होंने अपने व्याख्यान में महात्मा गांधी के जीवन और विचारों के बारे में विस्तार से बताया.

किंग जूनियर ने उस दिन के बारे में लिखा है, 'गांधी का संदेश इतना गहरा और विचारोत्तेजक था कि उस सभास्थल से मैं निकला और सीधे जाकर गांधी के जीवन और कार्यों के बारे में आधा दर्जन किताबें खरीद लाया.' अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने विचारों और कार्यों पर महात्मा गांधी के प्रभाव के बारे में विस्तार से लिखा है. आज पूरी दुनिया और विशेषकर भारतीय समाज जिस प्रकार के संघर्षों में फंस गया है, ऐसे हालात में किंग जूनियर की पुण्यतिथि के अवसर पर गांधी के बारे में उनके विचारों को फिर से पढ़ना और समझना बहुत जरूरी लगता है.

किंग जूनियर लिखते हैं, 'ज्यादातर लोगों की तरह मैंने भी गांधी के बारे में सुना जरूर था, लेकिन उन्हें गंभीरता से पढ़ा नहीं था. जैसे-जैसे मैं उन्हें पढ़ता गया, वैसे-वैसे उनके अहिंसक प्रतिरोध के अभियानों के प्रति मैं अत्यधिक मंत्रमुग्ध सा होता गया. खासतौर पर मैं समुद्र तक उनके नमक मार्च और उनके अनगिनत उपवासों से बहुत अधिक प्रेरित हुआ'

'...सत्याग्रह की पूरी अवधारणा ही मेरे लिए बहुत मायने रखती थी. इसमें 'सत्य' का मतलब है प्रेम और 'आग्रह' का अर्थ है बल. इस तरह सत्याग्रह का अर्थ है सत्य का बल या प्रेम का बल. जैसे-जैसे मैं गांधी के दर्शन में गहरे उतरता गया, प्रेम की शक्ति के बारे में मेरे संदेह भी धीरे-धीरे छंटते गए. पहली बार सामाजिक सुधार के क्षेत्र में इसकी ताकत मुझे देखने में आई. गांधी को पढ़ने से पहले मैं लगभग इस निष्कर्ष पर पर पहुंच चुका था कि ईसा मसीह द्वारा बताई गई प्रेम की नीति केवल व्यक्तिगत संबंधों में ही प्रभावी हो सकती है, सामाजिक संबंधों में नहीं. मुझे लगता था कि 'दूसरा गाल आगे कर देने' या 'अपने शत्रुओं से प्रेम करने' वाला दर्शन केवल व्यक्ति-व्यक्ति के बीच होने वाले संघर्षों की स्थिति में ही लागू होता है. प्रजातीय समूहों या राष्ट्रों के बीच संघर्ष की स्थिति में मुझे एक ज्यादा यथार्थवादी दृष्टिकोण की जरूरत महसूस होती थी. लेकिन गांधी को पढ़ने के बाद मैंने देखा कि मैं कितना गलत सोचता था....'

'...गांधी संभवतः इतिहास के ऐसे पहले शख्स होंगे, जिन्होंने ईसा मसीह के प्रेम की नीति को महज व्यक्तियों के बीच की नीति से ऊपर उठाकर बड़े पैमाने पर एक शक्तिशाली और प्रभावी सामाजिक बल के रूप में स्थापित कर दिया. प्रेम गांधी के लिए सामाजिक और सामूहिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली उपकरण था. प्रेम और अहिंसा पर इस गांधीवादी जोर में ही मैं सामाजिक सुधार का वह तरीका खोज पाया, जिसे मैं कब से ढूंढ़ रहा था. जो बौद्धिक और नैतिक संतुष्टि मैं बेंथम और मिल के उपयोगितावाद, मार्क्स और लेनिन की क्रांतिकारी पद्धतियों, हॉब्स के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत और 'प्रकृति की ओर लौटो' वाले रूसो के आशावाद और नीत्शे के सुपरमैन के दर्शन में नहीं पा सका था, वह मुझे गांधी के अहिंसक प्रतिरोध के दर्शन में मिला.'

'गांधी को पढ़ने के बाद मैं पूरी तरह आश्वस्त हो गया कि सच्चा शांतिवाद बुराई के प्रति अ-प्रतिरोध (नॉन-रेजस्टिंस) नहीं है, बल्कि बुराई के प्रति अहिंसक प्रतिरोध है. इन दोनों तरीकों में जमीन आसमान का फर्क है. गांधी ने बुराई का प्रतिकार उतनी ही सख्ती और ताकत से किया है, जितना कि कोई हिंसक प्रतिकार करने वाला करता, लेकिन उन्होंने घृणा के बजाय प्रेम के साथ प्रतिरोध किया. सच्चा शांतिवाद बुराई के प्रति अयथार्थवादी आत्मसमर्पण नहीं है, बल्कि यह प्रेम की शक्ति के जरिए साहस के साथ बुराई का सामना करना है. इस विश्वास के साथ कि किसी को हिंसक चोट पहुंचाने से अच्छा है, वह हिंसक चोट स्वयं खा लेना. क्योंकि किसी के ऊपर हिंसा करने से पूरे जगत में हिंसा और कड़वाहट का अस्तित्व कई गुणा बढ़ जाता है, जबकि हिंसाकारी की चोट अपने ऊपर ले लेने से प्रतिपक्षी में शर्म की भावना पैदा हो सकती है, और इससे उसका हृदय-परिवर्तन हो सकता है.'

1955-56 में किंग जूनियर की भागीदारी वाला प्रसिद्ध मांटगोमरी बस बहिष्कार आंदोलन महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह से ही प्रेरित था. उस आंदोलन के अपने अनुभव के बारे में किंग जूनियर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, 'जैसे-जैसे दिन बीतते गए, महात्मा गांधी की प्रेरणा ने अपना असर डालना शुरू कर दिया. मुझे जल्दी ही पता चल गया कि प्रेम के ईसाई सिद्धांत को यदि अहिंसा के गांधीवादी तरीके से प्रयोग किया जाए, तो यह नीग्रो लोगों को अपने स्वतंत्रता संग्राम में काम आने वाले सबसे शक्तिशाली हथियार के रूप में उपलब्ध था.'

'...1957 तक महात्मा गांधी का नाम मांटगोमरी में अच्छी तरह जाना जाने लगा था. वैसे भी लोग जिन्होंने भारत के इस कृषकाय भूरे संत का नाम कभी नहीं सुना था, वे भी अब गांधी का नाम ऐसे ले रहे थे, मानो उन्हें खूब अच्छी तरह जानने का दम भर रहे हों. अहिंसक प्रतिरोध ही इस आंदोलन की तकनीक के रूप में उभरा था, जबकि प्रेम इसको काबू में रखने वाले आदर्श का काम कर रहा था. दूसरे शब्दों में कहूं तो ईसा मसीह ने उत्साह और प्रेरणा दी, जबकि गांधी ने हमें तरीका मुहैया कराया.'

अपनी भारत यात्रा के अंतिम दिन 9 मार्च, 1959 को आकाशवाणी से प्रसारित किए गए अपने विदाई संदेश में किंग जूनियर ने कहा था- 'सच्चे अर्थों में महात्मा गांधी का जीवन अपने आप में कुछ सार्वभौमिक सिद्धांतों का मूर्तरूप था. ये सिद्धांत सृष्टि की नैतिक संरचना में अंतर्निहित ऐसे सिद्धांत हैं, जो गुरुत्वाकर्षण के नियम की तरह ही अपरिहार्य हैं.'

22 मार्च, 1959 को मांटगोमरी में खासतौर पर गांधी के ऊपर अपने प्रवचन में किंग जूनियर ने कहा था, 'दुनिया गांधी जैसे लोगों को पसंद नहीं करती. कितना आश्चर्य है! नहीं? वे ईसा मसीह जैसे लोगों को भी पसंद नहीं करते. वे लिंकन जैसे लोगों को भी पसंद नहीं करते. उन्होंने गांधी को मार डाला- उस आदमी को, जिसने भारत के लिए सब कुछ किया. क्या यह महत्वपूर्ण नहीं है कि ईसामसीह और गांधी दोनों ही शुक्रवार के दिन मारे गए? और अब्राहम लिंकन भी तो एकदम उन्हीं कारणों से मार डाले गए, जिन कारणों से गांधी को गोली मारी गई.'

तब किसे पता था कि करीब नौ साल बाद चार अप्रैल, 1968 को खुद किंग जूनियर भी उन्हीं कारणों से मार डाले जाएंगे, जिन कारणों से उनके मुताबिक ईसा मसीह, लिंकन और गांधी मार डाले गए. हालांकि महज 39 साल जितनी कम उम्र में ही मरकर भी वे भी हमेशा के लिए अमर हो गए. **-सत्याग्रह**

15 अप्रैल : प्रभावती स्मृति दिवस पर

जब प्रभावती के ब्रह्मचर्य व्रत के अनुयायी बने जेपी

❑ डॉ. सुधांशु रंजन

प्रभावती के पहले तक केवल पुरुषों के ब्रह्मचर्य व्रत का उदाहरण ही मिलता है, जिसको स्त्रियां भी पति की अनुगामिनी के रूप में स्वीकार कर लेती थीं। जब जयप्रकाश नारायण अमेरिका गए तो प्रभावती गांधी जी के साथ रहने साबरमती आश्रम चली गईं. गांधी जी ने ब्रजकिशोर प्रसाद को पत्र लिखकर आग्रह किया था कि वे अपनी बेटी को आश्रम में रहने की अनुमति दें. जयप्रकाश ने अमेरिका से अपने पिताजी को चिट्ठी लिखकर अनुरोध किया कि वे प्रभावती को साबरमती आश्रम जाने दें. इसलिए प्रभावती आश्रम चली गईं और जयप्रकाश के अमेरिका प्रवास के दौरान वहीं रहीं.

प्रभावती ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्मचर्य का व्रत उन्होंने स्वेच्छा से लिया, गांधी जी के दबाव में नहीं, 'मैं यह कहना चाहती हूं कि जो लोग कहते हैं कि गांधी जी ने ऐसा करा दिया, और उनके कहने से मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, तो गांधी जी ने कुछ नहीं कहा था. बल्कि उन्होंने तो मना ही किया था, और वे बराबर कहते थे कि मुझको जेपी के साथ रहना चाहिए, उनकी देखभाल करनी चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए. गांधी जी की मेरे नाम की सब चिट्ठियों में उन्होंने ऐसा ही लिखा है. तो मैंने कोई व्रत किसी के कहने से नहीं लिया था. लेकिन बचपन से ही कुछ ऐसी वृत्ति मेरी थी. वहां आश्रम में जाकर जब देखा, तो स्वाभाविक रूप में इस तरफ अग्रसर हुई.'

स्पष्ट है कि महात्मा गांधी ने भले ही सीधे ढंग से प्रभावती को ब्रह्मचर्य का व्रत लेने को न कहा हो, किंतु उनके संस्पर्श में जिस तरह का संस्कार प्रभावती के अन्दर विकसित हुआ, उसकी यह स्वाभाविक परिणति थी. आध्यात्मिक और चारित्रिक दृष्टि से प्रभावती का व्यक्तित्व अत्यधिक विकसित था और आश्रम का संस्कार उसमें उत्प्रेरक बना. गांधी जी स्वयं सन 1906 में ब्रह्मचर्य का व्रत ले चुके थे. व्रत लेने के दिन तक उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विचार नहीं किया था, पर व्रत लेते समय किया. ब्रह्मचर्य की महिमा से वे अभिभूत थे. उन्होंने स्वयं लिखा है, 'ब्रह्मचर्य के सम्पूर्ण पालन का अर्थ है, ब्रह्म दर्शन. यह ज्ञान मुझे शास्त्र द्वारा नहीं हुआ. यह अर्थ मेरे सामने क्रम-क्रम से अनुभव सिद्ध होता गया. इससे संबंध रखने वाले शास्त्र वाक्य मैंने बाद में पढ़े. ब्रह्मचर्य में शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण समाया हुआ है. इसे मैं व्रत लेने के बाद दिनोंदिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा.'

इस बीच जेपी अमेरिका से नवंबर 1929 में वापस आए तो प्रभावती उनसे पटना में मिलीं. प्रभावती से उन्हें मालूम हुआ कि उन्होंने ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया है. जेपी मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं थे और न ही ब्रह्मचर्य में उन दिनों उनका विश्वास था. इसके अलावा बच्चों से उन्हें बेहद लगाव था और उनकी अपनी इच्छा भी थी कि उनके बच्चे हों. इसलिए प्रभावती का निर्णय सुनकर वे काफी विचलित हुए. किंतु प्रभावती अपने व्रत में अडिग थीं. इससे उनके दांपत्य जीवन में द्वंद्व और आंतरिक संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई.

दिसंबर में जेपी और प्रभावती गांधी जी से मिलने वर्धा गए. यह जेपी की महात्मा गांधी से पहली भेंट थी. कस्तूरबा ने आश्रम में जेपी का स्वागत एक दामाद की तरह किया. उनकी आत्मीयता से जेपी मुग्ध हो गए. ब्रह्मचर्य के बारे में जेपी की गांधी जी से चर्चा हुई. गांधी जी ने महसूस किया कि प्रभावती के व्रत से जेपी के अंदर आक्रोश है, किंतु वे नैतिक रूप से प्रभावती के साथ थे और उन्हें अपने संकल्प से हटने की सलाह नहीं दे सकते थे. सन 1929 से 1936 तक इस विषय को लेकर जेपी का गांधी जी से काफी पत्राचार होता रहा. जेपी ने बहुत कठोर शब्दों में गांधी जी को कई पत्र लिखे, लेकिन उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर बड़े स्नेह से उन्हें समझाने का प्रयास किया.

एक पत्र में उन्होंने जेपी को लिखा, 'तुम्हारे दुःख को समझ सकता हूं. तुम्हारे दुःख से मुझे दुःख हुआ है. तुम्हारा पत्र मिला है. स्पष्ट है, प्रभावती के साथ रहने की तुम्हारी इच्छा स्वाभाविक है. इस हालत में मैं उसे वर्धा रखना नहीं चाहता हूं. तुम्हारा जीवन नीरस बन रहा है, यह मुझे दुःख है ही. तुम्हारा मीठा और शुद्ध हृदय से लिखा हुआ ख़त मिला. मेरे लिए तुम्हारे दिल में स्थान व मान है, सो तो मैं अच्छी तरह जानता हूं. मिलेंगे तब बातें करेंगे.'

एक अन्य पत्र में गांधी जी ने लिखा. 'इसमें मेरी जिम्मेदारी तो है ही. प्रभा मेरे साथ रही, और मेरी बातों ने, मेरे आचार ने उस पर असर डाला. अब मैं नहीं जानता कि क्या करना उचित है. प्रभा मेरे पास आई, ब्रजकिशोर बाबू और तुम्हारी सम्मति से. मेरा जो कुछ असर प्रभा पर पड़ा, उसके लिए क्या किया जाए? लेकिन मेरे संपर्क से प्रभा की पिता-भक्ति और पति-प्रेम में न्यूनता नहीं आई है. अब मुझे कहो, मैं क्या करूं? यदि ऐसा चाहोगे कि प्रभा न मेरे पास आए और न मुझे पत्र लिखे, तो तुम्हारे संतोष के कारण मैं ऐसा प्रतिबंध भी स्वीकार कर लूंगा. तुम दोनों के आदर्श में भेद पाता हूं. प्रभावती के आदर्श बनने में मेरा हाथ है सही. उसका मुझे दुःख नहीं है. लेकिन तुम्हारा प्रेम उसे तुम्हारे आदर्श की ओर खींच ले जाए तो मैं राजी हूंगा, मेरी जिम्मेवारी कम होगी, तुमको संतोष होगा. मेरे लिए यह इतनी खेद की बात है कि जो शिक्षा प्रभा ने मेरे पास पाई है, उसमें तुम्हारी पूर्ण सम्मति नहीं है. तुम्हारी ब्रह्मचर्य की इच्छा नहीं है. इसलिए तुम प्रभावती की इच्छा के रक्षक बनते हो और अपने लिए दूसरी स्त्री ढूंढ़ते हो, इस योजना में कहीं भी मुझको बुराई प्रतीत नहीं होती है.'

प्रभावती का व्रत जीवनपर्यंत निष्कलंक रहा. इसे जेपी ने भी माना है, लेकिन अपने बारे में उन्होंने ऐसा दावा नहीं किया. पवनार आश्रम में जब बहनों ने उनसे ब्रह्मचर्य के अनुभव के बारे में पूछा तो उन्होंने इस बारे में प्रभावती से बात करने को कहा. सन 1972 में डॉ हरिदेव शर्मा के साथ बातचीत में उन्होंने स्वीकारा, 'ब्रह्मचर्य की शपथ मैंने नहीं ली थी. वह तो हमको श्रेय मिलता है बेकार ही. वैसे, ब्रह्मचर्य निभाया है, ऐसा भी नहीं है. अब यह था कि प्रभावती ने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था. हमें तो इसको ऑनर करना था... तो एक तरह से कम्पलसरी ब्रह्मचर्य हुआ. कोई बहुत अधिकांश तो निभाया, लेकिन पूर्ण रूप से नहीं निभा हमारी तरफ से. इन्होंने तो निभाया.'

प्रभावती जी की मृत्यु के बाद भी कुछ पत्रिकाओं के साथ भेंटवार्ता में ब्रह्मचर्य से संबंधित प्रश्नों का जवाब उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि कह नहीं सकता, ब्रह्मचर्य का पालन किया या नहीं. ❑

10 अप्रैल : पुण्यतिथि

मोरारजी देसाई : यादों के झरोखे से

❑ रेहान फ़ज़ल

कई साल पहले नेहरू के सचिव एमओ मथाई अपने एक मित्र के साथ कुतुब मीनार घूमने गए. मित्र ने उत्सुकतावश उनसे पूछा कि मोरारजी देसाई किस तरह के शख़्स हैं? मथाई का जवाब था, 'ये जो आप सामने लोहे का खंबा देख रहे हैं. उसे बस गाँधी टोपी पहना दीजिए, मोरारजी देसाई आप के सामने होंगे... शरीर और दिमाग... दोनों से बिल्कुल सीधे, खरे और कड़े.'

1977 से 1979 तक भारत के प्रधानमंत्री रहे मोरारजी देसाई के बारे में मशहूर था कि वो सख़्त किस्म के गाँधीवादी और दीवानगी की हद तक ईमानदार थे. एक बार जब उन पर दक्षिणपंथी यानि राइटिस्ट होने का आरोप लगा तो उन्होंने मुस्करा कर कहा था, 'हाँ मैं राइटिस्ट हूँ क्योंकि आई बिलीव इन डूइंग थिंग्स राइट.' भारत में राजनीतिक रूप से महत्वाकांक्षी होना बहुत अच्छा नहीं माना जाता है, कम से कम सार्वजनिक रूप से तो हरगिज़ नहीं. लेकिन मोरारजी भाई ने प्रधानमंत्री बनने की अपनी इच्छा को कभी नहीं छिपाया.

नेहरू के निधन के बाद मशहूर पत्रकार कुलदीप नैयर लाल बहादुर शास्त्री का संदेश लेकर मोरारजी देसाई के पास गए कि अगर वे जयप्रकाश नारायण और इंदिरा गाँधी में से किसी एक नाम पर सहमत हो जाते हैं, तो मैं प्रधानमंत्री का चुनाव नहीं लड़ूंगा. जब नैयर ने शास्त्री का संदेश मोरारजी देसाई को दिया, तो उन्होंने छूटते ही कहा, 'जयप्रकाश नारायण? वो तो संभ्रमित व्यक्ति हैं...और इंदिरा गाँधी? दैट चिट ऑफ़ ए गर्ल.

मोरारजी के बेटे काँति देसाई ने नैयर से कहा, 'अपने शास्त्री जी से कहिए कि बैठ जाएं. मोरारजी देसाई को वे हरा नहीं पाएंगे.' कुलदीप नैयर ने आते ही यूएनआई टिकर पर कहानी की, जिसका शीर्षक था, 'मोरारजी ने सबसे पहले अपनी टोपी रिंग में फेंकी.' मोरारजी देसाई ने इसके लिए कुलदीप नैयर को कभी माफ़ नहीं किया. उन्होंने समझाने की कोशिश की कि इसके लिए उन्हें अपने समर्थकों को दोष देना चाहिए, जो नेहरू की अंत्येष्टि के दिन ही लोगों से कहते फिर रहे थे कि प्रधानमंत्री पद उनकी जेब में है.

मोरारजी देसाई की प्रधानमंत्री बनने की इस खुलेआम चाहत ने माहौल उनके खिलाफ़ कर दिया और लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बनाए गए. शास्त्री के देहांत के बाद भी उन्होंने प्रधानमंत्री बनने का कोशिश की, लेकिन उन्हे पर्याप्त समर्थन नहीं मिल पाया. इंदिरा गांधी ने उन्हें उप प्रधानमत्री और वित्त मंत्री की जिम्मेदारी सौंपी. लेकिन जल्द ही दोनों के बीच मतभेद शुरू हो गए. इंदर मल्होत्रा कहते हैं कि इसकी शुरुआत तब हुई, जब राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में एक मुख्यमंत्री ने इंदिरा गांधी से एक सवाल पूछा. इंदिरा गांधी उस सवाल का जवाब दे ही रही थीं कि मोरारजी देसाई ने उन्हें टोकते हुए कहा कि, 'मैं इस सवाल का जवाब बेहतर ढंग से दे सकता हूँ.'

पीएन हक्सर ने बाद में मुझे बताया कि उसी दिन इंदिरा गाँधी ने तय कर लिया था कि मोरारजी उनके मंत्रिमंडल में नहीं रहेंगे. बाद में कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार, बैंकों के राष्ट्रीयकरण और प्रिवी पर्स के मुद्दे पर इंदिरा गांधी से उनका टकराव इस हद तक बढ़ा कि इंदिरा ने उनसे वित्त मंत्रालय ले लेने का फ़ैसला किया. मोरारजी देसाई ने इंदिरा गांधी को पत्र लिख कर कहा कि वे उप प्रधानमंत्री के पद पर भी नहीं रहना चाहेंगे.

1977 में मोरारजी देसाई को भारत का चौथा प्रधानमंत्री बनाया गया और उसमें बहुत बड़ी भूमिका निभाई आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण ने. प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने भारतीय विदेश सेवा के नटवर सिंह का तबादला ब्रिटेन से जांबिया कर दिया क्योंकि किसी ने उनके कान भर दिए थे कि जिस दिन आपातकाल लगाया गया था, नटवर सिंह ने अपने घर शैम्पेन पार्टी दी थी. 1978 में ज़ांबिया के प्रधानमंत्री सरकारी यात्रा पर भारत आए. अभी तक ये परंपरा रही है कि जब भी कोई विदेशी राष्ट्राध्यक्ष भारत के दौरे पर आता है तो उस देश में भारत का राजदूत या उच्चायुक्त भी उसके साथ भारत आता है.

जब नटवर सिंह ने भारत आने की योजना बनाई तो उन्हें मना कर दिया गया. इसके बावजूद वे भारत आए. उनके इस काम को बहुत बड़ी नाफ़रमानी माना गया. मोरारजी देसाई ने उन्हें आदेश दिया कि वे अगले दिन सुबह आठ बजे उनसे मिलने उनके निवास पर हाजिर हों. नटवर सिंह याद करते हैं, 'प्रधानमंत्री ने छूटते ही कहा, आप बग़ैर बुलाए आ गए. मैंने जवाब दिया, आप ही ने तो मुझे मिलने बुलाया है. मोरारजी बोले मैं आपके भारत आने की बात कर रहा हूँ. आप बग़ैर इजाज़त यहाँ आ गए. मैंने उन्हें पुरानी परंपरा का वास्ता दिया. थोड़ी देर देसाई चुप रहे. फिर बोले तुम उस आतंकवादी न्कोमा को क्यों इतना बढ़ावा दे रहे हो. मैंने कहा वे आतंकवादी नहीं हैं, बल्कि बहुत सम्मानित स्वतंत्रता सेनानी हैं.

एक पाकिस्तानी लेखक ग्रुप कैप्टेन एसएम हाली ने 'पाकिस्तान डिफ़ेंस जर्नल' में लिखा है कि, '1977 में रॉ के एक एजेंट ने काहूटा परमाणु परियोजना का ब्लू प्रिंट दस हज़ार डॉलर में भारत को बेचने की पेशकश की. जब मोरारजी देसाई को इसके बारे में बताया गया, तो उन्होंने तुरंत जनरल जियाउल हक को फ़ोन करके बताया कि हमें पता है कि आप कहूटा में परमाणु बम बना रहे हैं. नतीजा ये हुआ कि रॉ का वह जासूस पकड़ा गया और भारत को वह टॉप सीक्रेट ब्लू प्रिंट कभी नहीं मिल पाया.'

इंदर मल्होत्रा बताते हैं कि 1977 में जीतने के बाद जब मोरारजी देसाई ने अपनी पहली प्रेस कांफ्रेंस की तो उसमें मैं भी मौजूद था. उन्होंने कहा कि, 'मैं भारत सोवियत संधि को दोबारा देखूंगा और अगर वह भारत के हित में नहीं हुई तो उसे समाप्त कर दूँगा.' दूसरी चीज़ उन्होंने कही कि भारत की मध्यपूर्व नीति पर दोबारा नज़र दौड़ाएंगे. उसके बाद मोरारजी मॉस्को गए थे. उनके साथ उनका बेटा काँति देसाई भी गया था. वापसी में उनका जहाज़ कुछ देर के लिए तेहरान में रुका. कांति देसाई हिंदुजा बंधुओं से मिलने वहीं रुक गए. इससे उस समय बहुत हंगामा हुआ.

उसके कुछ दिन बाद की बात है, अटल बिहारी वाजपेयी अपने घर में बैठे हुए थे. तभी मोरारजी के प्रधान सचिव का फ़ोन आया कि मोरारजी उनको अपने घर पर बुला रहे हैं. वाजपेयी जब वहाँ पहुंचे तो देखा कि इसराइल के विदेश मंत्री मोशे दायान वहाँ बैठे हुए हैं. वाजपेयी ने बाद में उनसे कहा कि, 'उन्हें आमंत्रित करने से पहले मुझसे तो बात कर ली होती.' इसराइल के विदेश मंत्री कांति देसाई के बुलाने पर आ पहुंचे थे।

अपने निजी और सार्वजनिक जीवन में देसाई जितने विवादास्पद रहे हों, लेकिन उन्हें भारत और पाकिस्तान के सर्वोच्च नागरिक सम्मान निशाने पाकिस्तान और भारत रत्न से सम्मानित किया गया. उनकी ईमानदारी और संयम को कुछ हल्कों में पसंद किया गया, लेकिन अधिकतर लोगों की नज़र में वे एक रूढ़िवादी शख़्स थे, जिनके जीवन में राजनीतिक लचीलेपन के लिए बहुत कम जगह थी.

-बीबीसी

13 अप्रैल 1919

जलियांवाला बाग नरसंहार

क्या गांधीजी ने डायर को क्षमा कर दिया था!!

जलियांवाला बाग नरसंहार के मुख्य अपराधी ब्रिगेडियर जनरल डायर भारतीयों के लिए घृणा का पात्र था, लेकिन महात्मा गांधी ने ना सिर्फ उसे बार–बार क्षमा किया, बल्कि उन्होंने लोगों को 'डायरवाद' के खिलाफ आगाह भी किया था. उस काल में, महात्मा गांधी देश को एक अलग राह दिखाने का प्रयास कर रहे थे- वह थी अहिंसा और क्षमा की राह.

गांधी का कहना था कि 'जनरल डायर के काम आना और निर्दोष लोगों को मारने में उसकी मदद करना मेरे लिए पाप समान होगा. पर, यदि वह किसी रोग का शिकार है तो उसे वापस जीवन देना मेरे लिए क्षमा और प्यार का अभ्यास होगा.' गांधी ने यहां तक लिखा कि डायर ने 'मात्र कुछ शरीरों को नष्ट किया, पर कइयों ने एक राष्ट्र की आत्मा को मारने का प्रयास किया.' उन्होंने कहा कि 'जनरल डायर के लिए जो गुस्सा जताया जा रहा है, मैं समझता हूं, काफी हद तक उसका लक्ष्य गलत है.'

जब जीवन के आखिरी काल में डायर पक्षाघात का शिकार हुआ, एक सहयोगी ने गांधी को लिखे पत्र में उसके बुरे स्वास्थ्य का कारण जलियांवाला बाग नरसंहार को बताया. भगवद्गीता में दृढ़ आस्था रखने वाले गांधी ने इसका तर्कसंगत जवाब दिया. 'मैं नहीं समझता कि उसके पक्षाघात का अनिवार्यतः जलियांवाला बाग में उसके कृत्य से कोई संबंध है. क्या आपने इस तरह की मान्यताओं के दुष्परिणामों पर गौर किया है? आपको मेरी पेचिश, एपेंडिसाइटिस और इस वक्त हल्के पक्षाघात की जानकारी होगी. मुझे बहुत अफसोस होगा यदि कुछ अच्छे अंग्रेज़ ये सोचने लगें, ऐसा आकलन वे कर सकते हैं, कि अंग्रेज़ हुकूमत के उग्र विरोध के कारण मुझे ये रोग लगे हैं.'

जलियांवाला बाग नरसंहार के करीब दो दशक बाद उन्होंने एक बार फिर डायर को माफ किया. 'दिवंगत जनरल डायर से अधिक क्रूर और रक्त–पिपासु कौन हो सकता था?' गांधी ने सवाल किया, 'फिर भी जलियांवाला बाग कांग्रेस जांच समिति ने मेरी सलाह पर उस पर मुकदमा चलाने की मांग करने से इनकार कर दिया. मेरे मन में उसके प्रति लेशमात्र भी दुर्भावना नहीं थी. मैं उससे व्यक्तिगत रूप से मिलना और उसके दिल को टटोलना भी चाहता था, पर ये मात्र तमन्ना ही रह गई.'

क्षमा करो, भूलो मत

गांधी ने डायर को क्षमा कर दिया, पर ये स्पष्ट करते हुए कि 'घृणा की अनुपस्थिति का मतलब दोषी का बचाव बिल्कुल नहीं है.'

'हालांकि हम दूसरों के कुकर्मों को भूल जाने और क्षमा करने की बात करते हैं, पर कुछ बातों को भूलना पाप होगा.' डायर और ओड्वायर (जलियांवाला बाग नरसंहार के दौरान पंजाब का लेफ्टिनेंट गवर्नर) की चर्चा करते हुए गांधी ने कहा, 'हम जलियांवाला बाग नरसंहार के लिए डायर और ओड्वायर को माफ भले ही कर दें, हम इसे भूल नहीं सकते।'

डायर ने जलियांवाला बाग के अपने कृत्य पर पश्चाताप भी नहीं किया था. पर एक बार, उसने अपने व्याख्यानों से मिलने वाली रकम को 'अमृतसर की 1919 की घटना में मृत भारतीयों के परिजनों में' वितरित करने पर विचार किया था. गांधी की पत्रिका नवजीवन में इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा गया कि डायर ने अपनी आय को जलियांवाला बाग के मृतकों के परिवारों के लिए रखने का साहस किया. हालांकि डायर अपने इस विचार पर अमल नहीं कर पाया. मैनचेस्टर गार्डियन की रिपोर्ट के अनुसार, 'उसने अपना इरादा बदल लिया और उस आय को भारत में तैनात ब्रितानी अधिकारियों की पत्नियों को चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराने के लिए निर्मित कोष में डाल दिया.'

गांधी और डायरवाद

उल्लेखनीय है कि गांधी ने निर्मम ताकत और हिंसक दमन के लिए 'डायरवाद' शब्द का इस्तेमाल कर, उस संदर्भ में जनरल डायर को सर्वाधिक उल्लिखित नाम बना दिया था. उन्होंने अस्पृश्यता को 'हिंदू धर्म का डायरवाद' करार दिया था. उन्होंने गोरक्षा के नाम पर हत्या किए जाने को भी जनरल डायर के कृत्य के समरूप बताया था.

एक पत्र के जवाब में गांधी ने लिखा, 'जनरल डायर निश्चय ही ये मान बैठा था कि यदि उसने जो किया, वैसा नहीं किया होता तो अंग्रेज़ पुरुषों और महिलाओं की जान पर खतरा बन आता. हम, जो कि बेहतर जानते हैं, इसे क्रूरता और प्रतिशोध का कृत्य कहते हैं, पर जनरल डायर के खुद के दृष्टिकोण से, उसने सही किया. अनेक हिंदुओं को पक्का विश्वास है कि किसी गाय को मारने के इच्छुक व्यक्ति को मार डालना उचित है, और इसके लिए वे शास्त्रों को उद्धृत करेंगे और अनेकों दूसरे हिंदू उनके कृत्य को जायज़ करार देते नज़र आएंगे. लेकिन गाय की पवित्रता में आस्था नहीं रखने वाले लोगों को एक पशु के कत्ल की वजह से किसी इंसान की हत्या किया जाना अतार्किक लगेगा.'

दांडी मार्च के दौरान गांधी को पता चला कि कुछ गांव वाले पुलिस या अन्य सरकारी अधिकारियों को सामान या पानी नहीं देते हैं. गांधी ने कहा कि यदि डायर और ओड्वायर, 'जिनके कृत्य नृसंशता के रूप थे और जिन्हें मैंने 'डायरवाद' कहा था, यदि वे मुझे गोली मार देते हैं, पर मुझमें अब भी जान है और मुझे पता चलता है कि उनमें से एक को सांप ने काट खाया है, तो मैं ज़हर चूसने के लिए भागता हुआ जाऊंगा. मैंने अतीत में भी ऐसे काम किए हैं.'

उन्होंने अमेरिकी पत्रकार–इतिहासकार कैथरीन मेयो से कहा कि 'मैं इस देश को डायरवाद से दूर देखना चाहता हूं. मतलब, मैं नहीं चाहता कि मेरे देश के पास जब शक्ति आए, तो यह दूसरों पर अपने रीति–रिवाज थोपने के लिए वहशतअंगेज़ी पर उतारू हो जाए.'

-संकलित

कश्मीर में बैठ के कश्मीर को समझने का अहसास-ए-गुनाह

❑ सत्यम श्रीवास्तव

जीने का सुभीता तलाशने की आदिम और अभिनव प्रवृत्ति के चलते मनुष्य बना और बचा रहता है। स्वाभिमान, सम्मान और इज्ज़त-प्रतिष्ठा सब खाये-अघाये लोगों के शगल हैं। ज़रूरी बात है जीना और जब, जिस तरह जीना संभव हो, उस तरह जीना और खुद को लंबे समय तक बचाए रखना। यह लंबा समय कितना भी लंबा हो सकता है। आखिर प्रतीक्षा करना भी उतना ही आदिम और अभिनव स्वभाव है।

हमें दूर से देखकर लग सकता है कि आखिर इस तरह लोग कैसे जी सकते हैं? धोखा खाकर भी कैसे मुस्कुरा सकते हैं? इतनी बेइज्जती के बाद भी भविष्य को लेकर कोई योजनाएं कैसे बनायी जा सकती हैं? लेकिन यहां एक मूल सवाल ज़रूर है कि यहां 'हम' कौन हैं? और जिनके लिए 'हम' यह सब सोच रहे हैं, 'वे' कौन हैं? यह 'हम' और 'वे' इतने भिन्न धरातल पर होते हैं कि हम उनके स्थानापन्न होने की एक स्वांतः सुखाय कोशिश कर ज़रूर सकते हैं, लेकिन यह वाकई संभव नहीं है और व्यावहारिक तो कतई नहीं है। धोखा खाकर भी अगर कोई फिर-फिर खड़ा होने की कोशिश करे, अपनी जिंदगी को नए सिरे से बदली हुई परिस्थितियों और निज़ाम के अनुरूप ढालने की कोशिश करे, तो उसे उसकी कमजोरी समझा जाय या बहादुरी? कहना मुश्किल है, क्योंकि यहां कौन किसके लिए कह रहा है, इसका निर्धारण करना बहुत ज़रूरी है।

आज के कश्मीर को देखना कोई पांच साल पहले के कश्मीर को देखे जाने से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं है। वही फौज, वही तलाशी, वही रोक-टोक, कुछ भी नहीं बदला। एक सभ्यता का पहले अन्य राज्यों की तुलना में अधिक स्वायत्त तथा पूर्ण राज्य में बदलना अगर एक राजनैतिक बदलाव रहा होगा, तो इस अधिक स्वायत्त और पूर्ण राज्य का केंद्र के अधीन केंद्रशासित प्रदेश में बदला जाना भी एक राजनैतिक बदलाव से ज्यादा कुछ और है क्या?

लोगों को देखें, उनसे मिलें, बातें करें, उन्हें सुनें और उनके चेहरे के भाव-विन्यास को देखें तो कश्मीरियों की पेशानी पर पड़ने वाले बलों की संख्या में कुछ गणनात्मक अंतर भले दिखलायी दे, लेकिन समग्र रूप से उसका कुल मतलब यही है कि हम पहले ही कौन से सुखी थे। उनकी चिंता में उनके साथ खड़े होने और साथ खड़े होने-सा दिखलायी देने के बीच की बारीक लेकिन फैसलाकुन फांक को उन्होंने अब जाकर पहचाना भी है शायद। इसीलिए जब सरोकारों का आदान-प्रदान (ज्यादातर मामलों में प्रदान ही) हृदय की गहराइयों में उतरने लगता है तो वे अब एक ऐसे मुकाम पर उसको रोकना सीख गए हैं, जहां आपके सरोकारों की बेपनाह इज्ज़त अफजाई के बावजूद उनकी कोई बात, आपकी नज़रों से औचक टकरा गयी, कोई एक सिम्त नज़र यह जायजा तो ले ही लेती है कि आपको वाकई कोई फर्क पड़ा।

5 अगस्त, 2019 को जब देश की संसद में एक पॉलिटिकल इवेंट हुआ और पहले से गुपचुप चली आ रही तैयारी के साथ उसे तत्काल प्रभाव से लागू कर दिया गया, तो इसमें जो सबसे बड़ी चीज़ गायब थी, वह थी- एक लोकतन्त्र में लोकतन्त्र की न्यूनतम मर्यादा। फैसलों में जनभागीदारी की सायास और घनघोर उपेक्षा। इसलिए यह निर्णय, जिसे कश्मीरियों की मुक्ति का मार्ग बतलाया गया, वह उन्हें असीमित समय के लिए बंधक बनाए जाने की हुंकार भरी घोषणा के रूप में देखा गया। चूंकि पूर्वपीठिका इतनी मजबूत थी और नए सिरे से बनते हुए या बनाए जाते हुए राष्ट्र की बड़ी आबादी का अपार जनसमर्थन था, इसलिए इस लोकतन्त्र की न्यूनतम मर्यादा का पालन न किए जाने का असर केवल उन पर हुआ, जिनकी इसमें उपेक्षा हुई। बाकी के लिए कश्मीर में प्लॉट खरीदने की एक कुंठाग्रस्त और फर्जी महत्वाकांक्षा संभव होती दिखलायी दी।

जिन पर असर हुआ, उनसे डेढ़ साल बाद मिलना और उनका सामना करना, खुद को गुनहगार के रूप में पेश करने से कम एहसास नहीं है, हालांकि प्यार-मोहब्बत और दुनियावी सरोकारों को लेकर ऊष्मा में अब भी कोई कमी नहीं आयी है। इस बार भी ठीक वही ताप महसूस हुआ, जो 5 अगस्त 2019 से पहले होता रहा, लेकिन इंडिया दैट इज़ भारत (राज्यों के संघ) ने अपनी नैतिक ज़मीन खो दी। खुद को उस ज़मीन से जुड़ा पाना, जिसकी नैतिक शक्ति किसी नकारात्मक अभियान की भेंट चढ़ चुकी हो, इस ज़मीन पर आपको शर्मिंदगी के एहसास से भर देती है।

राजनीति एक क्रूर भय है। उसका सामना करने के लिए पहली अर्हता है दिल को पत्थर करना और दिमाग को संवेदनाओं से रिक्त किया जाना। इसलिए शुरुआती ग्लानि के बावजूद यह समझने की चेष्टा करना कि लोग सोचते क्या हैं। क्या वे इस नए निज़ाम में खुश हैं, नाराज़ हैं, उदास हैं, हताश हैं या नियति की कोई पालयनवादी भूमिका यहां भी उतनी ही तीव्र है, जितना दुनियावी मामलों में लोगों ने सहर्ष अपनायी हुई है?

एक बात तो तय है और ये सभी पर लागू होती है कि वर्षों से अपने महलों में जमे-रमे राजनैतिक ठेकेदारों के प्रति अथाह गुस्से ने इस बलात और निरकुंश निर्णय को संघ की सरकार (संघीय सरकार) के लिए आसान बना दिया। इसे इस तरह भी देखा जाना चाहिए कि राज इसलिए चिरस्थायी चीज़ नहीं हो जाता, क्योंकि राज करने वाले और राज के अधीन रहने वालों का मज़हब एक है। एक मज़हब होना तभी तक काबिले बर्दाश्त है, जब तक वह अपनी हद में रहे। यह एक भरोसा देता है कि जनता जब अपनी अवनति को भी किसी स्थायी हो चुके राज के नेस्तनाबूद हो जाने की शर्त पर स्वीकार कर ले तो यह भी किसी नए निज़ाम के लिए रास्ते खोलना ही है। कश्मीर में लोग

इस बात से वाकई खुश हैं कि अब्दुल्ला और मुफ्ती परिवारों के साथ यही होना चाहिए था। ठीक है कि यह उनकी आज़ादी की कीमत पर हुआ, पर सच्चाई तो यह है कि वे इस मुल्क में ऐसी ही जनता बने रहने के लिए अभिशप्त हैं, जिसमें आज़ादी का मतलब वह नहीं है, जिसका तसव्वुर 'स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी' के साथ आँखों में उतरता हो।

वे इतने आज़ाद थे ही कब? इस आज़ादी का एक ख्याल था, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता आया, हालांकि तजुरबा तब भी किसी ने न किया। एक ढीठ निज़ाम जब कोई फैसला लेता और थोपता है तो जनता के पास कई विकल्पों के बाद जो बचता है और अंततः वह जिसका अनुसरण करती है, वह है उस निज़ाम के निरंकुश फैसले को चुपचाप अंगीकार कर लेना। यह महज कश्मीर के मामले में नहीं हुआ, बल्कि नोटबंदी से लेकर देशव्यापी अविवेकी लॉकडाउन तक हमने देखा। आज जब कश्मीर में किसी जगह बैठकर यह कॉलम लिखा जा रहा है, तो देश के कई राज्यों में बलात् आंशिक या पूर्ण लॉकडाउन की खबरें शाया हो रही हैं। जो अभी लॉकडाउन का अंततः पालन करने वाली जनता है, उसकी संख्या कश्मीर की कुल आबादी से बेशक कुछ ज्यादा ही होगी!

आखिर को दिल्ली, जिसे देश की राजनैतिक राजधानी का दर्जा प्राप्त है और जिसके वैभव में कश्मीर से कम सभ्यताओं और शासकों के आवागमन का इतिहास दर्ज है- भी ठीक उसी गति को प्राप्त हुई है, जिस गति को कश्मीर। क्या वाकई कोई नागरिक प्रतिरोध दिल्ली में देखा गया? याद नहीं पड़ता।

यहां आकर लगता है कि जैसे मेनलैंड के संविधान प्रेमियों और जनतंत्र प्रेमियों ने कश्मीरियों के ऊपर ही सहने और लड़ने की जिम्मेदारी थोप दी है। उसके बरक्स वे खुद हर उस निर्णय के साथ हो लिए हैं, जिनमें जनतंत्र की न्यूनतम मर्यादाओं का पालन नहीं किया गया। धोखा क्या केवल कश्मीरियों ने खाया है? हम मेनलैंड वालों ने नहीं? कितनी बार? थोड़ा कम, लेकिन इतना भी नहीं कि हम और धोखे खाने के लिए बाट जोहें।

यह समय धोखे की राजनीति का है और धोखा हम सबकी नियति बनता जा रहा है। उसके बाद की परिस्थितियों में हम सब एक नाव पर सवार होने को अभिशप्त हैं। सकारात्मक संकेतों में इसे नए तरह के बहनापे और भ्रातृत्व भाव के तौर पर देखने से कुछ राहत बेशक मिलती है। धोखा खाये नागरिकों की एकता भी कुछ नया गढ़ और रच सकती है। बात इंतज़ार की है, जिसके लिए हम संस्कारी आज्ञाकारी नागरिक प्रशिक्षित हैं। ❑

सर्वोदय बुक स्टॉल व्यवस्थापकों की वार्षिक बैठक संपन्न

कोरोना के कहर और आर्थिक दबाव के बीच 25 मार्च 2021 को राजघाट परिसर,वाराणसी में स्टॉल व्यवस्थापकों की वार्षिक बैठक सफलतापूर्वक संपन्न हुई। इस बैठक में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल, सर्व सेवा संघ प्रकाशन के पूर्व संयोजक रामधीरज एवं उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के वरिष्ठ साथी अरविंद कुशवाहा अतिथि के रूप में शामिल हुए। हम सभी को यह आशंका थी कि विपरीत परिस्थिति में आयोजित की गई इस बैठक में शायद पर्याप्त भागीदारी न हो, पर इन आशंकाओं को दूर करते हुए 22 स्टाल व्यवस्थापकों का प्रतिनिधित्व हुआ, जो काफी उत्साहवर्धक है।

इस बैठक में विस्तार से स्टॉल वालों की समस्याओं और पुस्तक बिक्री के संबंध में आ रही लगातार गिरावट के विषय पर विशेष चर्चा हुई। व्यवस्थापकों ने सलाह दी कि इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए अन्य सामग्रियों के माध्यम से भी, विशेषकर खादी-ग्रामोद्योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के सामानों की बिक्री की अनुमति मिलनी चाहिए। कोरोना कहर को ध्यान में रखते हुए सैनिटाइजर, मास्क इत्यादि की भी बिक्री की छूट हासिल करने का प्रयास करना चाहिए।

इन सब सुझावों को देखते हुए सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल ने कहा कि आपके सभी सुझावों को हम मान्य करते हैं, इस दिशा में पहल की जाएगी। सारे संबंधित पदाधिकारियों को पत्र लिखकर और मिलकर उन्हें सारी परिस्थिति से अवगत कराया जाएगा। हम अपने इस कार्यभार को 3 महीने के अंदर पूरा करेंगे। उन्होंने सर्वोदय बुक स्टॉल के महत्व को दर्शाते हुए कहा कि हमारे साथ ऐसे स्टाल व्यवस्थापक भी हैं, जो पिछले 50 वर्षों से विचार प्रचार के काम में समर्पित रूप से लगे हुए हैं।

प्रकाशन के पूर्व संयोजक रामधीरज ने भी अपने अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि हमें प्रदर्शनी पर ध्यान देना चाहिए और चुनिंदा तिथियों पर इसका आयोजन किया जाना चाहिए। इससे जनसंपर्क बढ़ता है। बैठक में अरविंद कुशवाहा ने कहा कि गांधी विचार का तेज सर्वोदय बुक स्टॉलों से प्रकट हो सकता है, हमें ऐसी कोशिश करनी चाहिए।

अंत में स्टॉल व्यवस्थापकों की ओर से नव निर्वाचित अध्यक्ष चंदन पाल का खादी वस्त्र से अभिनंदन किया गया। स्टॉल व्यस्थापकों की ओर से आलोक अवस्थी, पिनाकी रंजन, प्रकाश नारायण चौहान, चंद्रभूषण, अनिल पांडेय, अजय यादव, संजय सिंह आदि आदि के अलावा प्रकाशन की ओर से अनूप आचार्य और सुशील कुमार सिंह शामिल हुए।

कार्यक्रम का प्रारम्भ गांधी प्रतिमा पर माल्यार्पण से हुआ और सभी ने किसान यात्री गुड्डू यादव को सफलता की शुभकामनाएँ दीं। बैठक में प्रकाशन कार्यकर्ताओं व स्टॉल व्यवस्थापकों के परिजनों की दुखद मृत्यु व गणेशशंकर विद्यार्थी की शहादत को याद करते हुए सभी को मौन श्रद्धांजलि दी गई।

–अरविंद अंजुम

श्रद्धांजलि :

रामभाऊ म्हसकर
बहुआयामी व्यक्तित्त्व के धनी

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है! गांधीजी की इस सीख पर जिन्होंने जीवन भर अमल किया; ऐसे रामभाऊ ने अपना शतक पूरा करने से 5 साल पहले हम सबसे 5 अप्रैल 2021 को विदाई ले ली।

रामभाऊ का जीवन प्रवास गांधीजी की प्रेरणा से शुरू हुआ और विनोबाजी के विचारों पर अमल करते हुए पूर्ण हुआ. उम्र के 17वें-18वें साल में ही वह देशभक्ति की धुन में घर से बाहर निकले. सन 1945 में उनका सेवाग्राम आश्रम में आगमन हुआ और गांधीजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिला. लेकिन जीवन की सार्थकता सिद्ध हो, ऐसा पूर्ण सान्निध्य उन्हें आचार्य विनोबाजी का प्राप्त हुआ.

रामभाऊ की कर्मठता, बुद्धि की प्रखरता और सादगी जीवन के अंतिम दिन तक कायम थी. उनकी कर्मशीलता का परिचय देने वाले कुछ प्रसंग—

परमधाम आश्रम में विनोबाजी द्वारा ऋषी खेती/कांचन मुक्ति के प्रयोग किये गये, उसमें एक योद्धा की तरह रामभाऊ ने अपनी भूमिका पूर्ण की. विनोबाजी जब भूदान में पूर्ण व्यस्त थे, तब वर्धा, पवनार, सेवाग्राम के सभी काम पूर्ण करने की अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन रामभाऊ ने बखूबी किया. परमधाम प्रकाशन में उन्होंने बतौर प्रकाशक कार्य किया.

गाडे गुरूजी की अखंड गीताई पदयात्रा पूरे महाराष्ट्र में 13 साल तक चली. गाडे गुरूजी की इस यात्रा को सफलतापूर्वक पूरा कराने के लिए एक सूत्रधार के रूप में रामभाऊ ने पूर्ण जिम्मेदारी निभाई. सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कई साल तक सेवा प्रदान की. विवेकानंद भाऊ, जालंदर भाऊ, मालती ताई, अपर्णा ताई जैसे अनेक युवाओं को सर्वोदय में स्थिर करने का काम उन्होंने किया.

गीताई और गीता प्रवचन का प्रचार प्रसार जनता में नियमित रूप से हो, इसलिए 1972 में गीताई मिशन की स्थापना विनोबाजी के मार्गदर्शन में हुई. ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार की प्रविणा ताई देसाई के साथ रामभाऊ इसके मुख्य संस्थापकों में एक थे. गीताई केंद्र पुसद का कार्य उनके लिए अंतिम उत्तरार्ध रहा. यही उनकी अंतिम कर्मस्थली भी सिद्ध हुई.

रामभाऊ एक श्रेष्ठ साहित्यकार भी थे। निराला उनकी सर्वोत्तम कृति है। जिन्हें अपने पारिवारिक जीवन से ऊपर उठकर सामाजिक जीवन स्वीकार करना हो, उन सभी को यह किताब जरूर पढ़नी चाहिए. 'लाथा खाण्याचे स्वांतत्र्य' भी उनकी स्वतंत्र रचना हैं. 'गीताईचा बालबोध अर्थ', 'विनोबांनी सांगितलेल्या गोष्टी' आदि के अलावा सर्वोदय विचारों का टीकात्मक विश्लेषण करने वाली उनकी अनेक किताबें हैं.

हाजिरजवाब रामभाऊ

यह भी उनकी एक विशेषता थी. एक बार हम रामभाऊ को रेलवे स्टेशन पर छोड़ने गये थे. उस समय उन्होंने लोकमान्य तिलक के जीवन का एक प्रसंग बताया कि तिलक जी को जिस गाड़ी से जाना था, वह गाड़ी हर दिन विलंब से आती थी, इसलिए उनके साथी कहते थे कि हम विलंब से स्टेशन पर जायेंगे. लेकिन लोकमान्य तिलक ने कहा कि नहीं, हम सही समय पर जायेंगे...और उस दिन गाड़ी सही समय पर आयी.

अगर कोई आवश्यकता से अधिक पानी का दुरुपयोग करता तो उसे वे विनोबाजी की नदी में ज्यादा तैरने वाली बात बताते थे. देह छूटने के 4 दिन पहले भी, समन्वय आश्रम, बोधगया के द्वारिको सुंदरानी के संदर्भ में उन्होंने एक प्रसंग बताया था कि द्वारिको भाई द्वारा अपना घर छोड़ने के 8 साल बाद उनके पिताजी ने उनसे बात की थी. ऐसे अनेक प्रसंगों में वे सही समय पर सही उपदेशात्मक बोध देते थे.

सादगीपूर्ण रामभाऊ

रामभाऊ ने सादगीपूर्ण आचरण और न्यूनतम उपयोग कर जीवन जीने की कला का जो आदर्श हमारे सामने रखा हैं, वह हम सबके लिए प्रेरणादायी है. पठानकोट आश्रम में हम एक कार्यक्रम के लिए साथ थे. रामभाऊ बुजुर्ग थे, इस कारण उन्हे स्वतंत्र कमरा दिया गया था; बाकी सबको एक कमरा दिया गया था. दूसरे दिन दोपहर भोजन के बाद हम अपने कमरे में आराम कर रहे थे. कुछ समय बाद रामभाऊ भी हमारे कमरे में आराम करने के लिए आये. बोले कि मेरे कमरे में अकेले के लिए पंखा लगाने के बजाय आपके कमरे में आराम करने से उतनी बिजली की बचत होगी।

रामभाऊ अपने लिए कभी भी स्वतंत्र गाड़ी, ऑटो करना पसंद नहीं करते थे; सार्वजनिक व्यवस्था का ही प्रवास के लिए उपयोग करते थे. वस्त्र के बारे में भगवान बुद्ध के साहित्य में जो प्रसंग है कि उनके भिक्षु वस्त्र का पूर्ण उपयोग करते थे, वे इसका प्रत्यक्ष जीता जागता उदाहरण थे. रामभाऊ अंतिम समय तक अपने कपड़े खुद ही धोते थे.

अध्ययनशील रामभाऊ

सुबह, शाम की प्रार्थना और सुबह का अध्ययन, इसमें सिर्फ अंतिम 1/2 दिन का अपवाद हुआ. नयी नयी प्रेरणादायी किताबें खरीदना, उनके लेखक, प्रकाशक से संपर्क करना, संबंध बनाना भी उनकी रुचि का विषय था. अंतिम एक साल से वे सुबह की प्रार्थना में गीताई चिंतनिका नियमित रूप से पढते थे और इस किताब की महत्ता बताने में कभी थकते नहीं थे. इस प्रकार बहुआयामी व्यक्तिमत्व के धनी थे रामभाऊ म्हसकर.

-रवींद्र गावंडे

किशन गोरडिया
किशन और किसन का समन्वय

किशन भाई स्वयं अपने नाम का उच्चारण 'किसन' करते थे, किशन नहीं. एक बार मैंने उनसे पूछा कि ऐसा क्यूँ? तो उन्होंने कहा कि उनके पिता ने तो उनका नाम कृष्णकांत रखा था, लेकिन बाद में उम्र थोड़ी बढ़ने के बाद मैंने ही अपना नाम किशन से किसन कर दिया था, कारण कि किसी निरक्षर व्यक्ति को भी नाम लेने में विशेष प्रयत्न न करना पड़े। कठिन भाषा और कठिन शब्दों से उन्हें अरुचि थी. भद्रता का दिखावा करने वालों और उस पर सर्वाधिकार जताने वालों से भी उन्हें बहुत तकलीफ थी. 1980 में गुजरात में अनामत विरोधी आंदोलन हुआ तो गुजरात सर्वोदय मंडल ने सर्वोदय दर्शन के भाष्यकार आचार्य दादा धर्माधिकारी के व्याख्यानों का आयोजन किया था. उन व्याख्यानों में दादा धर्माधिकारी ने अनामत-विरोधी आंदोलन के कारणों को समझाते हुए कहा था कि किसन समाज में आगे आयें, उसके खिलाफ क्या किशन को तकलीफ है? लड़ाई किशन और किसन के बीच की है. आपको समझ में आ ही गया होगा कि किशन किस समाज में से आता

है और किसन किस समाज से? अपने किशन भाई तो स्वयं की खुशी से ही किशन के बदले किसन हो गये.

अब मैं यदि ये कहूँ कि अपनी मर्जी से कृष्णकांत से अपना नाम किसन कर देने वाले किशन भाई बिल्डर थे और मुंबई के बड़े बिल्डरों में से एक थे, तो मुझे पक्का विश्वास है कि पढ़ने वालों को आघात ही लगेगा. अपनी मर्जी से सामाजिक, सांस्कृतिक सीढ़ी से उतर कर अपने नाम का बहुजन समाजीकरण (Subalternisation) करने वाले किशन भाई बिल्डर और वह भी एक सफल बिल्डर बने। समाज के साथ अपने को जुड़ा हुआ समझने वाला कोई भी संवेदनशील व्यक्ति बिल्डर की हैसियत से कैसे सफल हो सकता है? बिल्डर के नाते किशन भाई का आगमन उनका तीसरा जन्म था. वे पहले साबुन और इंडस्ट्रियल सर्विसेज का उद्योग चलाते थे. उसमें भी वे सफल ही हुए थे. उनकी सफलता का रहस्य था उनकी सातत्यपूर्वक जागरूकता! जो स्वीकारा, वह छोड़ना ही नहीं है. यह केवल धंधे की ही बात नहीं थी. निजी और सार्वजनिक जीवन में भी किशन भाई को कोई नई बात पकड़ाना और अपनाई हुई बात छुड़वाना बहुत ही कठिन काम था. वे अपना स्वयं का लक्ष्य तय कर लेते और निकल पड़ते। उन्हें सफलता प्राप्त करनी ही है, इस संकल्प के साथ. दस बार भी असफल हो जायें, तो भी ग्यारहवीं बार प्रयास करने के लिए तैयार रहते थे. उनके अंदर निवास करने वाला मजदूर हमेशा जिंदा रहा। उन्होंने पूरी जिंदगी उस मजदूर के संग एकात्मता बनाये रखी थी, विविध प्रकार की सुख-सुविधा के बीच भी. किशन की भद्रता और किसन के श्रम का सुंदर समन्वय उनमें था.

किशन भाई के परिवार की हालत ठीक नहीं थी. पिता के माथे पर कर्ज का बोझ था। किशन भाई मुंबई के म्युनिसिपल स्कूल में शिक्षक की नौकरी करने लगे. लेकिन उनको लगने लगा कि शिक्षक के वेतन से वे न अपने पिताजी का कर्ज अदा कर सकेंगे और न परिवार का पालन-पोषण कर सकेंगे. कोई धंधा करना चाहिए, ऐसा उन्होंने सोचा. दूसरी तरफ भूदान आंदोलन शुरू हुआ था और किशन भाई सब कुछ त्याग कर उसमें कूदना भी चाहते थे.

किशन भाई विनोबा भावे के पास पहुंचे और अपने अंदर की व्यथा उनके सामने रख दी. नौकरी करते हुए कर्ज चुका नहीं सकते, लेकिन कर्ज तो चुकाना ही है. धंधा करूं तो उसमें घाटा लगने का डर रहेगा ही. इस तरह मेरा समय और शक्ति खर्च हो रही है. और मुझे जितनी जल्दी बन सके, उतनी जल्दी सर्वोदय आंदोलन में भी कूदना है। इसलिए मुझे क्या करना चाहिए? विनोबा ने उन्हें दो विकल्प सुझाये थे. एक तो यह कि पहले हरेक लेनदार से मिलकर उसे विश्वास में लेकर कर्ज की माफी कराने को कहना और कोई कर्ज माफ करने को राजी न हो, तो उसका पूरा कर्ज चुका देना. किशन भाई को कर्ज माफ कराने का विकल्प स्वमानजनक नहीं लगा। आखिर उन्होंने मास्टर की नौकरी से मुक्त होकर धंधा शुरू कर दिया.

किशन भाई ने पैसे कमाने के लिए धंधा नहीं शुरू किया था, ऋण उतारने के लिए किया था. इसलिए उन्होंने विवेक और साधना की दीक्षा देने वाले केदारनाथ जी के मंत्र को स्वीकार किया. पानी में उतरे हो, तो जितना गीला होना है, उतना तो होंगे ही, लेकिन पानी में बिना डूबे तैर भी सकते हो. उसके बाद कभी सर्वोदय आंदोलन में कूदना तो नहीं हुआ, लेकिन कन्स्ट्रक्शन के धंधे में डूबे बिना तैरने का प्रयोग उन्होंने करके दिखाया, जो उनके परिवार और कंपनी के संचालकों ने अबतक जिंदा रखा है.

पिताजी का ऋण तो उतर गया, लेकिन समाज के ऋण का क्या? वह भी उतारना चाहिए और समाज से जो हम लेते हैं, वह तो सबसे पहले ज्यादा से ज्यादा देकर उतारना चाहिए. प्रारंभ के वर्षों में एक पालनकर्ता की तरह वे सर्वोदय कार्यकर्ताओं को मदद देते थे. किसी के दुःख-दर्द के समय किशन भाई खड़े न हों, ऐसा कभी नहीं हुआ.

1990 के दशक में धंधे से निवृत्त होकर उन्होंने सोचा कि ऐसी कोई व्यवस्था करनी जरूरी है कि समाज के प्रश्नों के मूल को समझें, प्रश्नों के स्वरूप को समझें, उन प्रश्नों को हल करने का काम जो कर रहे हैं, उनकी मदद करें और यह मदद भी परंपरागत स्वरूप की न हो, बल्कि आत्मनिर्भरतायुक्त व जीवन को टिकाने वाली हो. सबसे बड़ी बात कि वह व्यवस्था भी स्वयं आत्मनिर्भर हो जाये. समझ, उपाय, इलाज, सहायता और आत्म-निर्भरता ऐसे चतुष्कोणीय इंतजाम का होना जरूरी है. किशन और किसन दोनों स्वायत्त और आत्मनिर्भर हों, यह जरूरी है. किशन भाई इस बात को अपनी भाषा में सस्टेनेबल सोशल वर्क के नाते सामने रखते थे। यह उनका दूसरा अवतार था।

वे सतत अपने कार्य में मग्न रहने वाले और पूर्ण विराम को नहीं मानने वाले थे। उनकी मृत्यु उनके स्वप्नों के बीच आने वाला अल्पविराम बनना चाहिए और वैसा ही होगा, ऐसी मेरी अंतरात्मा मुझे आवाज देती है। **-रमेश ओझा**

द्वारिको सुंदरानी शांति के अग्रदूत

बोधगया स्थित समन्वय आश्रम के संचालक तथा गांधीवादी विचारक द्वारिको सुंदरानी नहीं रहे। 99 वर्ष की आयु में उन्होंने 31 मार्च 2021 की रात राजधानी पटना के निजी अस्पताल में अंतिम सांस ली। वे पिछले कुछ दिनों से बीमार चल रहे थे। उनके पार्थिव शरीर को समन्वय आश्रम परिसर के नेत्र ज्योति अस्पताल के हॉल में अंतिम दर्शन के लिए रखा गया। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने उनके निधन पर दुख जताते हुए राजकीय सम्मान के साथ अंतिम संस्कार कराने का निर्देश दिया।

महात्मा गांधी, विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण के सान्निध्य में रहकर आजीवन समाज सेवा करने वाले द्वारिको सुंदरानी को इलाके के लोग गरीबों का मसीहा मानते थे। उनके निधन से हर तरफ शोक की लहर है। उनका जन्म छह जून 1922 को पाकिस्तान के कराची व सिंध प्रांत के बीच लरकाना के मानजन गांव में हुआ था। उन्होंने बोधगया को अपनी कर्मभूमि बनाया था।

सुंदरानी जी ने अपना पूरा जीवन महादलित और समाज के अंतिम पायदान पर रहे व्यक्तियों के उत्थान में लगा दिया। महादलित और मुसहर समाज के बच्चों के लिए वे आश्रम परिसर में आवासीय विद्यालय चलाते थे। वे पिछले चार दशक से गुजरात के भंसाली ट्रस्ट के महेश भाई भंसाली से मिलकर बोधगया में निःशुल्क नेत्रदान शिविर के संचालन में सहयोग दे रहे थे। इस अस्पताल से लाखों आंखों को रोशनी मिल चुकी है। सुंदरानी जी 1984 से 1985 तक महाबोधि मंदिर प्रबंधकारिणी समिति के सचिव पद पर भी पदस्थापित थे।

जमुनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित

जमुनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित द्वारिको सुंदरानी गया में समन्वय आश्रम और समन्वय विद्यापीठ के बच्चों को शिक्षित कर जीवन जीने की कला सिखाते थे। समन्वय आश्रम की स्थापना भूदान प्रणेता विनोबा ने की

थी। आश्रम परिसर और जिले के मोहनपुर प्रखंड के बगहा गांव में स्थित समन्वय विद्यापीठ में मुसहर और भोक्ता जाति के बच्चे पढ़ते हैं। आवासीय समन्वय विद्यापीठ में पढ़ाई कर रहे बच्चे जिले के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र के रहने वाले हैं। दोनों जगहों पर बालवाड़ी से लेकर आठवीं कक्षा तक की नैतिक शिक्षा देकर एक अलग तरह का नैतिक समाज तैयार किया जा रहा है।

महात्मा गांधी की समवाय शिक्षा से बदली तस्वीर

सुंदरानी जी कहा करते थे कि उनके आश्रम में दी जाने वाली शिक्षा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की समवाय शिक्षा पर आधारित है। इस शिक्षा का मकसद जीवन बदलना और संस्कार में बदलाव लाना है। वे कहा करते थे कि आवासीय शिक्षा बेहतर है।

विनोबा जी के कहने पर बोधगया आए

सुंदरानी जी 20 साल की आयु में गांधीवादी विचारों के प्रभाव में आए। इसके बाद उनकी जिंदगी बदल गई। वे लोगों के लिए जीने लगे। 1953 में वे विनोबा जी के कहने पर बोधगया आए। 18 अप्रैल 1954 को बोधगया में समन्वय आश्रम की स्थापना हुई। मौन रहकर समाज में क्रांति की मशाल जलाने वाले सुंदरानी जी शांति के अग्रदूत थे।

बिहारी लाल
समाज सेवा की एक मिसाल

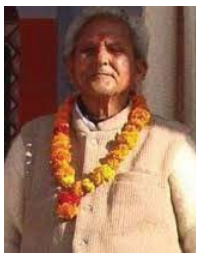

बिहारी लाल उत्तराखण्ड के समाज सेवकों की अग्रिम पंक्ति में थे। 18 मार्च 2021 को उनका निधन हो गया। देश के सर्वोदय कार्यकर्ताओं के बीच उनकी विनम्रता, सरल स्वभाव और उल्लेखनीय समाज कार्य को बहुत आदर भाव से देखा जाता है। युवावस्था में ही सुन्दर लाल बहुगुणा, विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण, आर्यनायकम, राधाकृष्णन, ठाकुरदास बंग, प्रेम भाई, निर्मला गांधी, सरला बहन, कनकमल गाँधी, हेमवती नन्दन बहुगुणा, चंडी प्रसाद भट्ट, सरला बहन आदि से उनका सम्पर्क हो गया था।

8 नवम्बर 1942 को टिहरी के रगस्या गांव में पैदा हुए बिहारी लाल के पिता भरपुरु नगवाण ने सुन्दर लाल बहुगुणा, बहादुर सिंह राणा, धर्मानन्द नौटियाल जैसे प्रसिद्ध सर्वोदय नेताओं के साथ सत्तर के दशक तक डोला पालकी, दलितों को मंदिर प्रवेश, शराबबन्दी, आदि सामाजिक कार्यों में अहम भूमिका निभाई। पिता के इस काम से प्रेरित होकर बिहारी लाल देश के सर्वोदय आन्दोलन में शामिल हो गये थे। सेवाग्राम आश्रम में नई तालीम की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त वहां पर अध्यापन का कार्य भी किया। इसके बाद बेड़छी विद्यापीठ गुजरात में शिक्षक पद पर रहे। विभिन्न सर्वोदय संगठनों के बीच शिक्षण-प्रशिक्षण, रचनात्मक कार्यक्रमों से लेकर विनोबा भावे के भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के कार्यकर्ता भी रहे।

सन् 1971-72 में गांधी शान्ति प्रतिष्ठान नई दिल्ली से जुड़कर राधाकृष्णन व प्रेम भाई के सहयोग से बंगलादेश की आजादी के समय मिदनापुर-किशोरीपुर में उन्होंने एक लाख शरणार्थियों के राहत शिविर को भोजन, निवास, शिक्षा और स्वास्थ्य की विशेष सुविधाएं उपलब्ध करवायीं। यहां पर सामुदायिक शौचालय और स्वच्छता का इतना उच्च स्तर का काम था कि हर रोज मीडिया में इसके समाचार छपते रहते थे। जब बंगलादेश में शान्ति स्थापित होने लगी तो शरणार्थियों को घर तक पहुँचाने का काम भी उनकी टीम ने किया। शरणार्थियों की सेवा के बाद उन्होंने बनवासी सेवाश्रम मिर्जापुर में भी लम्बे समय तक नई तालीम का काम किया।

जून 1975 में जय प्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति में शामिल होकर बिहार के पलामू जिले में एक महीने से अधिक समय तक साथियों के साथ जेल में रहे। बाद में सम्पूर्ण क्रान्ति का संदेश देश भर में पहुँचाने के लिए कई स्थानों की यात्राएं कीं। उन्होंने अपने गाँव के लोगों को साथ लेकर लोक जीवन विकास भारती की स्थापना की। यहां पर सर्वप्रथम बापू की बुनियादी तालीम चलाने के लिए एक केन्द्र का निर्माण किया। बड़े बाँधों के विकल्प के रूप में मेड़ नदी पर 40 किलोवाट की छोटी पनबिजली का निर्माण भी करवाया।

पानी से चलने वाले इस सफल प्रयोग के बाद अगुंडा और गेवांली गांव में 50-50 किलोवाट की छोटी पनबिजली बनायी गयी। ये छोटी पनबिजली 90 के दशक में ऐसे वक्त में बनी, जब टिहरी बाँध का विरोध चल रहा था। टिहरी बांध के विकल्प के रूप में इनकी छोटी पनबिजली का जीता-जागता उदाहरण अखबारों की सुर्खियों में खूब छपता रहता था। साथ ही वे टिहरी बांध विरोध के धरना स्थल पर जाकर विरोध करते रहे। नई तालीम के विद्यार्थियों को शिल्पकला से जोड़ने के लिए उन्हें जैविक खेती, उद्यानीकरण, काष्ठकला, लौह कला, कताई-बुनाई, पशुपालन आदि सिखाया गया। क्षेत्र में कई लोग पढ़ाई के साथ शिल्प कला को सीखकर आत्मनिर्भर हुए। जब उन्होंने गांव में काम की शुरुआत की तो सबसे बड़ी समस्या साथ में रह रहे कार्यकर्ताओं की आजीविका के लिए आर्थिक स्त्रोत जुटाने की थी। इसके लिए उन्होंने सड़क, नहर आदि निर्माण कार्य में लगे मजदूरों को पढ़ाने का बीड़ा उठाया और उनके रोजगार के लिए श्रम संविदा सहकारी समिति बनाकर ठेकों का सीधा लाभ मजदूरों को दिलवाया और स्वयं भी मजदूरी करके लोगों की सेवा के लिए पैसे कमाये। उत्तराखण्ड में महिला समाख्या को स्थापित करके सैकडों महिलाओं को रोजगार दिलाया और महिला अधिकारों की आवाज बुलंद करवायी।

चैत्र मास में दलित महिलाओं का घर-घर नाचना भी इन्हीं के प्रयासों से बन्द हुआ। उन्हें श्रम संविदा सहकारी समिति से जोड़कर रोजगार उपलब्ध करवाया। चिपको आन्दोलन के दौरान बाल गंगा और धर्म गंगा के जल ग्रहण क्षेत्रों के हरे वृक्षों को बचाने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तर्ज पर वन काटने वाले ठेकेदारों व मजदूरों को स्थानीय बाजार व गांव से राशन-पानी आदि दैनिक आवश्यकताओं पर रोक लगायी गयी, जिसके कारण वन काटने वाले मजदूर उल्टे पांव वापस गये। इस तरह के अनेकों काम हैं, जो बिहारी लाल के नेतृत्व में हुए। वे हमेशा प्रचार-प्रसार से दूर रहकर मौन सेवक व कर्मयोगी की तरह भूमिका निभाते रहे।

-सुरेश भाई

दलेब सिंह सजवाण

वरिष्ठ सर्वोदयी नेता दलेब सिंह सजवाण का 6 अप्रैल को 92 वर्ष की उम्र में निधन हो गया। दलेब सिंह सजवाण आजीवन सर्वोदयी मूल्यों और स्वावलंबन के लिए सक्रिय रहे। वह राजकीय इंटर कॉलेज, नौल बासर के संस्थापक प्रबंधक रहे। इसके अलावा लोक जीवन विकास भारती के संस्थापक सदस्य तथा वर्तमान में उसके अध्यक्ष भी थे।

स्व. सजवाण चिपको आंदोलन, छुआछूत उन्मूलन आंदोलन तथा शराबबंदी सहित कई प्रमुख आंदोलनों में प्रमुखता से सक्रिय रहे। वह आजीवन कृषि और पशुपालन से जुड़े रहे।

जमीन और जमीर को बचाने की लड़ाई है किसान आंदोलन

(मिट्टी सत्याग्रह यात्रा की रिपार्ट)

असहयोग आंदोलन के 100वें वर्ष में किसान आंदोलन के समर्थन में गांधी के नमक सत्याग्रह की याद करते हुए मिट्टी यात्रा 30 मार्च को दांडी से 50 यात्रियों के साथ बस से शुरू हुई । नमक सत्याग्रह स्थल, सरदार पटेल के निवास बारदोली, किसान आंदोलन स्थल,साबरमती आश्रम , गांधी जी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ,मंडी गुजरात में जहां भी गई, वहां पुलिस की भारी उपस्थिति पाई गई। सभी कार्यक्रमों के आयोजकों को यात्रा की व्यवस्था करने वाले संगठनों और व्यक्तियों को पुलिस अधिकारी द्वारा दबाव डालते देखा और सुना गया।

गुजरात के जिस विकास मॉडल को लेकर देश में सत्ता सौंपी गई थी तथा जो विकास मॉडल बताया गया था, वह संपन्नता गुजरात के गांव देहात में तो देखने को नहीं मिली, लेकिन विकास के नाम पर गांव गांव में किसानों की जमीनों को कैसे कंपनियां बड़े पैमाने पर खरीद रही हैं, यहां तक कि किसान की गोचर (निस्तार की जमीन) को भी सरकार के द्वारा कंपनियों को सौंपने की तमाम कहानियां यात्रियों ने सुनी।

एपीएमसी की मंडियों में खरीद के बारे में किसान नेता विपिन पटेल ने बताया कि भरूच में पिछली बार 50 हजार कपास की गांठें खरीदी गई थीं, इस बार 15 हजार गांठें ही खरीदी गईं।

यात्रियों को गुजरात का जो मॉडल देखने को मिला, वह पूरी तरह तानाशाही पूर्ण - लोकतंत्र विरोधी लगा, ऐसा मेधा जी ने कहा। इस मॉडल में साबरमती से दांडी यात्रा करने वालों को रोक दिया गया। किसान नेता युद्धवीर सिंह को प्रेस कांफ्रेंस करने से रोका गया। विधायक जिग्नेश मेवानी बताते हैं कि गुजरात में जब भी कहीं कोई संगठन आंदोलन की घोषणा करता है तो उसके नेताओं को आंदोलन के दिन पुलिस नजर बंद कर देती है। कुल मिलाकर भय का वातावरण पैदा कर दिया गया है। जिस गुजरात (गांधी जी) ने आज़ादी के आंदोलन के दौरान देश को निडरता की सीख दी, उसी गुजरात और अब तो पूरे देश में सत्ता द्वारा डर पैदा कर राज किया जा रहा है, यह बात टिकैत ने अपने वक्तव्य में कही। उन्होंने कहा, किसान आंदोलन जमीन और जमीर दोनों को बचाने की लड़ाई है। यह देश के आम लोगो की कॉरपोरेट से आजादी की लड़ाई है। देश के नेता डरे हुए हैं। किसान डर के खिलाफ लड़ रहा है।

गुजरात जिस तरह पुलिस स्टेट में तब्दील हुआ है, उसी तरह देश को पुलिस स्टेट में तब्दील किया जा रहा है, यह किसान आंदोलन के साथ हो रहे व्यवहार से दिख रहा है। अडानी जैसे पूंजीपतियों को कम समय में अधिक से अधिक कमाने हेतु नीतियां बनाने वाले मॉडल को लागू करने के लिए मोदी सरकार देश को पुलिस स्टेट में तब्दील करने का मन बना चुकी है। पहले यह मॉडल भाजपा शासित राज्यों में, तथा बाद में पूरे देश में लागू होगा। इसे रोकना ही होगा।

गुजरात से राजस्थान जाने पर बागड़ किसान संगठन के साथी बतलाते हैं कि अभी कुछ समय पहले जब छात्रों ने आदिवासियों के लिए आरक्षित पदों को भरने का आंदोलन चलाया था, तब वहां भी गोली चलाई गई। वहीं दूसरा उदाहरण भी हमें उसी राजस्थान के मुंडोती जिला अजमेर में देखने को मिला, जहां ग्रामवासियों ने खनन माफियाओं से जमीन बचाने के लिए आंदोलन किया तथा सरकार से आवंटन रद्द करा दिया।

सुनीलम जी ने कहा कि हम सब देख रहे है कि राष्ट्रीय स्तर पर भी यह संघर्ष 550 किसान संगठनों के संयुक्त किसान मोर्चा के नेतृत्व में जारी है। आंदोलन के दौरान अब तक सैकड़ों किसानों की शहादत हो चुकी है, जिनके शहीद स्मारक 5-6 अप्रैल को बनाए गए हैं। यात्रा के दौरान बानसुर (राजस्थान) किसान महापंचायत में किसान नेता राकेश टिकैत ने गाजीपुर बॉर्डर के शहीद स्मारक और शाहजहांपुर बॉर्डर के शहीद स्मारक के लिए योगेंद्र यादव को गुजरात के 800 तथा राजस्थान के 200 गांवों से लाई गई मिट्टी के कलश सौंपे। सिरसा में जहां किसानों ने पक्का मोर्चा लगाया हुआ है, वहां सभा के बाद किसान चौक पर स्तम्भ बनाया गया। बहादुर गढ़ में किसानों के मोर्चे पर सर्वाधिक संख्या दिखी।

पिछली बार जब उपमुख्यमंत्री दुष्यंत चौटाला के इस्तीफे की मांग को लेकर हुए संघर्ष के दौरान पुलिस को वाटर केनन चलाते और बल प्रयोग करते देखा था, वही पुलिस आज सब कुछ चुपचाप देख रही थी। इसका मतलब है कि पुलिस पर हरियाणा में किसानों का दबाव बढ़ा है।

स्वाभाविक तौर पर हरियाणा के नरवाना, रोहतक और पंजाब के सुनाम में कार्यक्रम बड़ी भागीदारी के साथ हुए। अंतिम चरण में उत्तर प्रदेश से भी अच्छी भागीदारी दर्ज कराई गई। संदीप पांडे गंगा की रक्षा के लिए आंदोलनरत साधुओं के संदेश और मातृ आश्रम की मिट्टी लेकर आये। बनारस से मनरेगा मजदूर संगठन की महिलाएं पूर्वांचल के गांवों की मिट्टी लेकर पहुँच गई थीं। साझा संस्कृति मंच, जॉइंट एक्शन कमिटी और नागरिक संगठनों के सहयोग से निकली यात्राओं द्वारा कबीर की जन्मस्थली, संत रविदास की जन्मस्थली, शास्त्री जी की जन्मस्थली और धूमिल के गांव सहित कुल 25 गांवों से मिट्टी बॉर्डर पर पहुंचायी गयी।

मिट्टी सत्याग्रह में जलियांवाला बाग, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद के गांव से लेकर बिड़ला भवन दिल्ली में महात्मा गांधी की शहादत स्थल तक की मिट्टी भी लाई गई। नर्मदा आंदोलन, मजदूर संगठनों की महिलाओं ने इसमें बड़ी संख्या में भागीदारी की। महाराष्ट्र से शुरू हुई यह पहल सूत्र रूप में देश के 23 राज्यों के 1500 गांवों की मिट्टी से जुड़ी और संदेश देने में सफल हुई।

-स.ज. डेस्क

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

अनामिका सिंह की पांच कविताएं

1. आँत करे उत्पात

रिक्त उदर में जले अँगीठी,
आँत करे उत्पात।
हर कातर स्वर करे अनसुना
विकट पूस की रात।
आंत करे उत्पात।

कौन्तेय को लघुतर करने
खींचें खड़ी लकीर।
दानवीर कंबल वितरित कर,
खिंचवाएँ तस्वीर।

आँगन में है कुहरा,
घर में औंधी पड़ी परात।
आंत करे उत्पात।

प्यास न अधरों की बुझ पायी,
भरा नयन में नीर।
खरपतवार उगे हैं जब भी,
रोपी आस उशीर।

नीति पिण्ड भी नित नव रह-रह,
करते उल्कापात।
आंत करे उत्पात।

आश्वासन ही आश्वासन पर,
देख रहा गणतंत्र।
हाकिम फूँकें लाल किले से,
विफल हुए वे मंत्र।

बादों की नंगी तकली पर,
सूत रहे हैं कात।
आंत करे उत्पात।

2. चिरैया बचकर रहना

परिधि तुम्हारे पंखों की,
लो रहे हितैषी खींच
चिरैया बचकर रहना।

रूढ़िवाद की पैरों में मिल
बेड़ी डालेंगे।
तेरे चिंतन में पगली ये
आग लगा देंगे।

रखें चरण दस्तार न झूठे,
लें न प्रेम से भींच।
चिरैया बचकर रहना।

जगत हँसाई का कानों में
मंतर फूँकेंगे।
करने वश में तुझे,
नहीं ये जंतर चूकेंगे।
छल के हारिल कर के धोखा
देंगे आँखें मींच,
चिरैया बचकर रहना।

साँसें कितनी ली हैं कैसे,
बही निकालेंगे।
चाल-चलन की पोथी पत्री,
सभी खँगालेंगे।

संघर्षों से हुई प्रगति पर,
उछल न जाये कीच।
चिरैया बचकर रहना।

3. एक क़लम पर सौ खंजर हैं

इसको रोए उसको रोए,
बोल भला किस-किस को रोए!
एक क़लम पर सौ खंजर हैं।

सच के सुआ बेधती कीलें,
घात लगाए वहशी चीलें।
धन कुबेर के कासे खाली,
मसले कलियों को खुद माली।

गुलशन सारा धुआँ -धुआँ है,
बदहवास सारे मंजर हैं।
एक कलम पर सौ खंजर हैं।

रेहन पर हैं सत्ताधारी,
कुटिल नीतियाँ हैं दोधारी।
भाषण लच्छेदार सुनाएँ,
हर अवसर पर विष टपकायें।

विध्वंसों की भू उर्वर है,
सद्भावी चिंतन बंजर हैं।
एक कलम पर सौ खंजर हैं।

लोक तंत्र में लोक रुआँसा,
खल वजीर ने फेंका पाँसा।
लिखी दमन की चंट कहानी,
सकते में है चूनर धानी।

धन्नामल हैं रंगमहल में।
सड़कों पर अंजर पंजर हैं।
एक कलम पर सौ खंजर हैं।

4. हुई भूख अति ढीठ

उम्मीदों के कैसे होंगे, भारी फिर से पाँव।
धँसी आँख जिंदा मुर्दे की,
मिली पेट से पीठ।
आज़ादी भी प्रौढ़ हो चली,
हुई भूख अति ढीठ।

बंजर धरती बनी बिछौना,
सिर सूरज की छाँव।
कड़वा तेल नहीं शीशी में,
ख़त्म हो गया नून।
दो टिक्कड़ अंतड़ियाँ माँगें,
हुआ है गीला चून।
जा मुंडेर से कागा उड़ जा,
लेकर कर्कश काँव?

मौला मेरे रख दो काला, पथवारी ताबीज़।
अल्हड़ मुनिया आ पहुँची है
यौवन की दहलीज़।
पहन मुखौटे फिरें भेड़िये,
कब लग जाए दाँव।

5. रोटी का भूगोल

राजकोष भरकर भी क्यों है
रीता ही कश्कोल।
कितनी सदियाँ बीतीं अब तक,
फूँके कितने मंत्र।
राजमहल के किन्तु न होते,
खत्म कभी षड़यंत्र।
उदर भूख के मारे खोजें,
रोटी का भूगोल।

पोर-पोर में पीर बसी है,
हृदय उठा सैलाब।
श्वेत रंग के बगुले भी अब,
रोज बढ़ाते दाब।
घूरे पर है भाग्य देश का,
रोटी रहा टटोल।

राज काज का वैभव पाने,
रचते कुटिल प्रपंच।
रजत वर्क में झूठ परोसें,
लम्बे-चौड़े मंच।
माहुर गंगाजली बताएँ
कहते पी मधु घोल।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार